सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 47
अंक : 2
मई-2014

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-22002 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्‌भविष्यो विनश्यति।।

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

— अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे-जैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्‌भजन्ते मूढः परप्रत्यनेयबुद्धिः।।

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :–शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 47 | मई 2014 | अंक : 2

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानाम् परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद 6/7)

वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त ईश्वरों के, लोकपालों के भी महान् शासक हैं, अर्थात् वे सब भी उन महेश्वर के अधीन रहकर जगत् का शासन करते हैं। समस्त देवताओं के भी वे परम आराध्य हैं, समस्त पतियों–रक्षकों के भी परम पति हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं। उन स्तुति करने योग्य प्रकाश स्वरूप परमदेव परमात्मा को हम लोग सबसे पर जानते हैं। उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	प्रभु प्रार्थना ... – *डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी*	12
4.	भक्तों को श्री महाप्रभुजी के सिद्ध... –*अवनीश भटनागर*	14
5.	अनन्त विभूषित... – *श्रीमति शारदा सिसौदिया*	18
6.	श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा –*डॉ. विजय सिंह*	21
7.	श्री सद्गुरु को करें हम नमन – *"कुवँर" अनिल कुमार सिंह*	25
8.	योग की महिमा – *प्रो. ऋषिराम शर्मा*	30
9.	गोमुखासन	36
10.	योग-साधन में तप का महत्व –*श्री सुरेन्द्र बहादुर*	35
11.	जीवन की तमन्ना – *जगदीश राए बंसल*	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

निःश्रेयस सिद्धि की साधना

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गत वर्ष सिद्धयोग के इस स्तम्भ में हमने 'योग की प्रतीति' पर कई लेख लिखे, जिनमें श्री प्रत्यय से योगज्ञान का प्राप्त होना, श्री सद्गुरुदेव के शक्तिपात के द्वारा सद्यः प्रतीति होना, श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि आदि के द्वारा योगध्यान का प्राप्त होना एवं ईश्वर प्रणिधान करने से अभिमत वस्तु, समाधि का प्राप्त होना आदि–आदि विषय विस्तार से खोल करके स्पष्टीकरण के साथ प्रकाशित करा दिये गये हैं। आशा है सभी साधकों ने उनको ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा और समझा होगा कि ईश्वर–प्रणिधान के द्वारा आवर्जित किया ईश्वर साधकों को अपनी कृपा पूर्वक समाधि प्रदान करता है। यह भी एक प्रकार का अनादि कालीन महासिद्ध ईश्वर का शक्तिपात ही है। इस प्रकार के इन सभी विषयों का वर्णन कर देने के बाद श्री पतंजलि महाराज ने अपने 'योगदर्शन' में और भी कुछ अनुपम साधनों का वर्णन किया है जिनका अवलम्ब लेने वाले साधकों को अवश्य ही आत्मानुभूति का सीधा मार्ग मिलता है और वे साधक मन की एकाग्रता के कारण शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्षीभूत परम श्रेय को प्राप्त कर लेते हैं। इनमें से सर्व प्रथम प्राणायाम है।

प्राणायाम की अमर साधना

भगवान पतंजलि देव लिखते हैं कि –

प्रच्छर्दन विधारणभ्यां वा प्राणस्य।

अर्थात् प्राण को बाहर निकाल करके कुम्भक बढ़ाने से एवं आभ्यन्तर कुम्भक बढ़ाने से अनायास ही मन की एकाग्रता का अनुपम लाभ होता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं –

कोष्ठयस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनम्, विधारणम् – प्राणायामः, ताभ्यां वा मनसः स्थिति सम्पादयेत्।।

अर्थात् शरीर के भीतर की वायु को बाहर फेंकने को प्रच्छर्दन कहते हैं और भीतर को खींचने को विधारण कहते हैं। इन दोनों को करने से मन की एकाग्रता का लाभ होता है। श्री मनु जी महाराज अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं –

दह्यते हि ध्यायमानानां धातूनां यथा मला। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते मला प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार से सोना, चाँदी आदि धातुओं के मल को अग्नि में तपा कर दूर कर

दिया जाता है इसी प्रकार से इन्द्रियों के मल प्राणायाम से दूर हो जाते हैं।

प्राणायाम भी एक प्रकार का तप है। तप का लक्षण पिछले लेखों में बता दिया गया है 'द्वन्द्व सहनं तपः' सर्दी गर्मी भूख प्यास के जोड़े को सहना तप कहलाता है। प्राणायाम करने में भी स्वाभाविक द्वन्द्व सहन होता है क्योंकि प्राण की साधारण गति चलते रहने से सुख मिलता है और प्राण की गति को रोक दिया जाय तो मन उसमें कष्ट का अनुभव करता है, इसी का नाम द्वन्द्व सहन है। सर्दी–गर्मी आदि में भी सर्दी को सहन एवं गर्मी को सहन करना, इसी का नाम द्वन्द्व–सहन है। भगवान पतंजलि देव तप का फल बतलाते हुए योग दर्शन में लिखते हैं –

कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य –

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरण मलापगमात् काय सिद्धिः अणिमाद्या, तथेन्द्रिय सिद्धि = दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति।

अर्थात् बराबर किया हुआ तप अशुद्धि के आवरण को खत्म कर देता है। उस आवरण के समाप्त हो जाने से अणिमादिक कायसिद्धि और इसी प्रकार ऐन्द्रिय सिद्धि दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि सिद्धि उपलब्ध होती हैं। यह तप का ही महान प्रभाव है और योग में प्राणायाम से बढ़कर किसी दूसरे तप को नहीं माना है। जहाँ–जहाँ मनुष्य तप के प्रभाव से अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करता है उसी प्रकार प्राणायाम से प्राण और मन पर कन्ट्रोल करता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है।

यत्र प्राणोलीयते तत्र मनो लीयते।

अर्थात् जहाँ पर प्राण लय हो जाता है वहाँ मन लय हो जाता है और इसी प्रकार राजयोग की साधना द्वारा –

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणो लीयते।

अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ प्राण भी लय हो जाता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है। जिसने प्राण पर कण्ट्रोल कर लिया समझ लेना चाहिए कि उसने मन पर भी कण्ट्रोल कर लिया इन दोनों में किसी एक की साधना करने से दूसरे की साधना स्वाभाविक ही हो जाती है। इसलिए जो मन के ऊपर नियन्त्रण करना चाहते हैं उनके लिए प्राणायाम करना एक अमूल्य एवं अनुपम साधन है। इस उत्तम साधन को करने वाला व्यक्ति शनैः शनैः अवश्य ही निश्रेयस सिद्धि को पा लेता है। प्राणायाम हठ की साधना है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह प्राणायाम के अनुकूल शुद्ध वातावरण में ही इस साधना को करें। प्राणायाम की साधना के लिए हठयोग के परम उपदेशक हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठाभ्यासी योगी के लिए एक सुन्दर मठ निर्माण का आदेश दिया है। वह मठ ही प्राणायाम के अभ्यासी के लिए उपयुक्त साधना–स्थली हो सकता है।

श्री आत्माराम जी ने मठ निर्माण का उपदेश इस प्रकार किया है :–

अल्प द्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम्।
सम्यग्गोमय सान्द्र लिप्त, ममलं नि:शेष जन्तूज्झिम्।।
वाह्ये मण्डप वेदि कूप, रुचिरं प्राकार संवेष्टितम्।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभि:।।

अर्थात् योगाभ्यासी के लिए एक ऐसे सुन्दर मठ की आवश्यकता है, जिसका छोटा दरवाजा हो (और वह उत्तराभिमुख होना चाहिए) जिसकी जमीन समतल हो। किसी प्रकार के बिल वगैरह न हों ऊँचे–नीचे गड्ढे न बने हों बहुत ऊँचा न हो और बहुत नीचा भी न हो गोबर से सुन्दर अच्छी प्रकार लेपन किया हो, जिसमें किसी प्रकार के मच्छर तथा जीव जन्तु न हों। उसके सामने सुन्दर मण्डप वेदि आदि बनी हुई हो। एक ओर सुन्दर मीठे जल का कुँआ हो और जिसकी चहार दीवारी बनी हुई हो। इस प्रकार का सुन्दर मठ हठाभ्यासियों के लिए उपयुक्त साधना स्थल रहता है। हठाभ्यासी को चाहिए प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाले तीन बन्धों के अभ्यास पहले से कर लें, ताकि अभ्यास काल में इनका उपयोग किया जा सके। उन बन्धों का वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार किया है –

मूलबन्ध

पार्ष्णिभागेन संपीडय, योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूत्रबन्धोऽभिधीयते।।

अर्थात् दोनों पैरों की एड़ी अर्थात् टाकने से सीमनी को दबाये और उस भाग का आकुंचन करे, अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे, इसी का नाम मूल बन्ध है। मूलबन लगा करके यदि उड्डियान बन्ध लगाया जाय तो अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण अवश्य–अवश्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से इन्हीं भावों को स्पष्ट रूप से कहा है।

अपाने जुहति प्राणं, प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा:।।

अर्थात् अपान के अन्दर प्राण का हवन और प्राण के अन्दर अपान का, इस प्रकार से प्राणापान गतिरोधन करने से योगियों को प्राणायाम सिद्ध होता है। जिस समय योगी पदनाभ्यास का हठी मूलबन्ध लगा करके उड्डियान से प्राण का ऊर्ध्वाकर्षण करता है तो वह अपान हृदय देश में रहने वाले प्राण तक आकर्षित हो जाता है और उसी प्रकार ऊपर से जलन्धर बन्ध लगा देने से प्राण की गति अपान की ओर बढ़ जाती है , इस प्रकार प्राणापान की एकता से योगी लोग प्राणायान परायण रहते हैं।

उड्डियान की विधि

विधि बतलाने से पहले योगाचार्य आत्माराम योगी उड्डियान शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहते हैं –

बद्धो येन सुषुम्नायाम् प्राणस्तूड्डीयते यतः।

तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतम्।।

उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रांतं महाखगः।

उड्डीयानं तदैव स्यात्तत्र बंधोऽभिधीयते।।

अर्थात् जिसके कारण से सुषुम्णा के अन्दर प्राण उड़ान करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान कहा गया है। जिस प्रकार से एक बड़ा भारी पक्षी आकाश में उड़ा करता है इसी प्रकार से प्राण देह रूपी आकाश में इस बं के द्वारा गति करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान बंध है।

उड्डियान बंध की विधि

उदरे पश्चिमं तानं, नाभेरूर्ध्वच कारयेत्।

उड्डीयानो ह्यसो बंधो मृत्युमातंगकेसरी।।

अर्थात् पेट में नाभि से ऊपर के हिस्से में पश्चिम उत्तान करे अर्थात् (नाभि मण्डल को प्राण के ऊर्ध्वाकर्षण के द्वारा तनाव दे) इसी का नाम उड्डियान बन्ध है। जिस प्रकार से हाथी के ऊपर बबर शेर हमला कर देता है और उसको गिरा देता है इसी प्रकार यह बंध मृत्यु पर जय प्राप्त कराने के लिए अनुपम है।

उड्डीयान तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।

अभ्यसेत्सततं यस्तु, वृद्धोऽपि तरुणायते।।

नाभेरुर्ध्वमधश्चापि, तानं कुर्यात्प्रयत्नतः।

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः।।

सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानकः।

उड्डियाने दृढ़े बन्धे, मुक्तिः स्वभाविकी भवेत्।।

श्री गुरुदेव ने इस उड्डियान बंध को साधारण रूप से बतला दिया किन्तु फल इसका महान है। जो साधक इसका दृढ़तर अभ्यास करता है वह चाहे वृद्ध भी है तो भी अवश्य ही तरुणता को पा जाता है। जो साधक नाभि के ऊर्ध्व और अधोभाग को पश्चिम की ओर उत्तान करता है (पीठ की ओर) तनाव देता है वह छः महीने के अभ्यास से बिना किसी संशय के अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। यह उड्डियान बन्ध सभी बन्धों में उत्तम है। इस बन्ध का अभ्यास हो जाने के बाद साधक अवश्य ही मुक्ति पा जाता है। उड्डियान बन्ध कर लेने के बाद साधक को अवश्य ही जालन्धर बन्ध का अभ्यास करना चाहिए, उसकी विधि इस प्रकार है –

जालन्धर बन्ध की विधि

कंठमाकुंच्य हृदये, स्थापयेच्चिबुक दृढं।

बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः।।

बध्नाति हि शिराजाल-मधोगामि नभो जलम्।
ततो जालंधरो बन्धः कंठ दुःखौघनाशनः।
जालंधरे कृते बंधे, कंठ संकोच लक्षणे।
न पीयूष पतत्यग्नौ, न च वायुः प्रकुप्यति।।
कंठ संकोचनेनैव, द्वेनाड्यौ स्तम्भयेद्दृढम्।
मध्य चक्रमिदं ज्ञेयं, षोडशाधार बंधनम्।।

अर्थात् कंठ का आकुंचन करके ठोड़ी की दृढ़ता से छाती में लगा दे इसी का नाम जालन्धर बन्ध है। यह बन्ध बुढ़ापे और मौत का नाश करने वाला है। क्योंकि यह बन्ध अधोगामि शिरा नाड़ियों के जाल को बाँधता है। इसलिए इसका नाम जालन्धर बन्ध है। कंठ का आकुंचन करने वाले जालंधर को कर लेने के बाद चन्द्र-मण्डल से स्रवित होने वाला अमृत अग्नि में नहीं गिरता, और न ही वायु का प्रकोप होता, यह बंध इड़ा पिंगला का स्तम्भन करके कंठ में स्थित षोड़शाधार विशुद्ध चक्र के बन्धन का कारण है। साधक को चाहिए कि मूलबन्ध के द्वारा गुदाद्वार का आकुंचन करके उड्डियान बन्ध लगाये और उड्डियान लगाने के बाद कंठसंकोचन लक्षण रूप जालंधर बंध को लगावे। जो साधक इन तीन बन्धों को लगा करके प्राणायाम का अभ्यास करता है वह अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। साधक को चाहिए कि प्राणायाम से पहले इन तीनों बन्धों का अभ्यास बना ले। क्योंकि प्राणों पर कन्ट्रोल करने के लिए यह तीनों बन्ध परम श्रेयस्कर हैं। वस्तुतः प्राणपक्षी को यथार्थता से बाँधने में यह तीनों बन्ध ही सामर्थ्य वाले हैं। कुम्भक प्राणायाम से पहले साधक को चाहिए कि प्राण की गति को अधिक से अधिक लम्बी करना सीखे जिससे प्राणायाम काल में मनुष्य अपनी उस अमर साधना में पूर्णरूपेण सफल हो सके। योगी पवनाभ्यास से पहले ही निम्नांकित विधि से प्राण पर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देते हैं। उसका रूप इस प्रकार है पवनाभ्यासी साधक समकाय शिरोग्रीवं होकर सिद्धासन, स्वस्तीकासन अथवा पद्मासन से बैठ जाय। उसके बाद अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्षिण नासिका के छिद्र को हलका सा दबा करके बायीं नासिका से ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए शनैः शनैः श्वास को खींचे। श्वास को इतनी धीमी गति से खींचे जिससे वह ॐ शब्द कम से कम 16 मात्राओं से अन्दर जा सके, जब बाह्य वायु पूर्ण रूपेण अन्दर चला जाये तो पहले उसे रोकने का प्रयत्न न करे प्रत्युत कोष्ठगत वायु को दक्षिण नासापुट से उसी प्रकार से प्रणव की 16 मात्रा गिनते हुए शनैः शनैः निकाल दे, प्राण बाहर निकाल देने के बाद प्राण में थोड़ी सी घबराहट आयेगी जिससे प्राण पुनः जल्दी से अन्दर जाने की चेष्टा करेगा। किन्तु उस प्राण को यकायक अन्दर नहीं जाना चाहिए। प्रत्युत 16 की अपेक्षा दक्षिण नासापुट से प्रणव की 15 मात्रा गिनते हुए अन्दर ले जाय और पुनः फिर उसी प्रकार बायें नासारन्ध्र से ॐ की 15 मात्रा गिनते हुए निकाल दे। उसके बाद उसी नासिका से 14 मात्रा से ले जाय और दक्षिण नासिका से 11 मात्रा से ही प्राण बाहर निकाल दे, इसी प्रकार करते हुए प्राण की एक-एक मात्रा

घटाते हुए प्राण को समगति पर ले आए। यह भी एक प्रकार का प्राणायाम ही है। एवं नाड़ी शोधन का ही एक प्रकार है। ऐसा करने से साधक प्राण की गति पर नियन्त्रण कर लेता है। हमारे आचार्यो ने पवनाभ्यासी को सबसे पहले नाड़ीशोधन प्राणायाम करने का आदेश दिया है। उपरोक्त प्राणायाम भी नाड़ी-शोधन का ही एक प्रकार समझना चाहिए। यह साधन हठावलम्बी साधकों का प्रारम्भिक साधन है। एवं पवनाभ्यासी सन्तों का अनुभूत है। इसका अभ्यास करने वाला साधक आगे की कठिन साधनाओं में कभी भी अभिभूत नहीं होता है। अतः कुम्भक प्राणायाम करने से पहले साधक को चाहिए कि इस रेचक पूरक को अभ्यास की दृढ़ता से बढ़ाता रहे और कम से कम 6 मास तक इसका अभ्यास करे। उसके बाद वह साधक प्राण जप का अधिकारी बन जाता है। एक बात का और अवश्य विचार रखना चाहिए, कि इस अमर साधना का अभ्यास अधिकारी को ही करना चाहिए जो जिस विद्या का अधिकारी है वही उसको पा भी सकता है। अनधिकारी प्रवेश होने का प्रयत्न करता है तो वह स्खलित हो जाया करता है और बाद में इस प्रकार का साधक अपनी कमी न बतलाकर इस अमर विद्या के अन्दर दोष-दर्शन करता है और अन्य उत्साही साधकों को भी श्रेय मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न करता है।

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

भगवान श्री महादेव जी ने योगाधिकारी साधक के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं –

महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः।।
नव यौवन सम्पन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।
निर्भयस्च शुचिर्दक्षो दाता सर्व जनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः।।
शास्त्र विश्वाससम्पन्नो देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च महव्याधि विवर्जितः।।
अधिमात्रतरोज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः।।

अर्थात् महावीर्यवान्, परम उत्साही, बुद्धि कौशल से मन के भावों को तत्काल समझने वाला, शूरवीर, शास्त्रों का ज्ञाता, अभ्यास शील, मोह और व्याकुलता से रहित, नवयौवन संपन्न, मिताहारी, जितेन्द्रिय, निर्भय, पवित्र, सभी कार्यो के करने में चतुर, दाता, सबको सहारा देने वाला, सब प्रकार से अधिकारी दृढ़, बुद्धिमान्, स्वायत्त चेष्टा सहन शील, सुशील, धर्मचारी, मृदुभाषी, मन के रहस्य को गुप्त रखने वाला, शास्त्र विश्वास सम्पन्न देवता एवं गुरुदेव का पूजक, जन संग रहित किसी प्रकार की व्याधि से ग्रसित न हो इस प्रकार का साधक उत्तम योगाधिकारी है। ऐसे साधक की पूर्ण आस्था एवं विश्वास पूर्वक अभ्यास करने से बहुत

जल्दी सिद्धिप्राप्त होती है और इसके अतिरिक्त जो लोग श्रद्धाहीन है वह अपने लक्ष्य को पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं कर सकते।

न भवेत् संगयुक्तानां, तथा विश्वासिनामपि।
गुरु पूजा विहीनानां तथा च बहुसंगिनाम्।।
मिथ्यावादरतानां च, तथा निष्ठुरभाषिणाम्।
गुरु संतोष हीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाचन्।।

जो लोग कुसंगी है अविश्वासी है और गुरुदेव की पूजा से विहीन है जन-संग में पड़े रहते है, झूठ बोलते हैं और कठोर बोलते हैं गुरुदेव को संतुष्ट नहीं कर सकते ऐसे लोग कभी भी सिद्धि – भाजन नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त –

फलिस्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथम लक्षणम्।
द्वितीयं श्रद्धयायुक्त, तृतीयं गुरुपूजनम्।।
चतुर्थ समताभावं, पञ्चमेन्दिय निग्रहम्।
षष्ठं च प्रमिताहार, सप्तम नैव विद्यते।।

जो लोग विश्वास करने वाले है, श्रद्धा युक्त है, गुरुपदपूजक है, समत्व बुद्धि युक्त है, इन्द्रिय निग्रह युक्त ब्रह्मचारी है, और मिताहारी हैं ऐसे लोग थोड़े समय में ही सिद्धि को पा जाया करते हैं। साधक को चाहिये यत्न पूर्वक अपने अभ्यास को बढ़ाता रहे और उपरोक्त अभ्यास को दृढ़ता पूर्वक करता रहे। ऐसा करने से वह साधक हठ विद्या का उत्तम अधिकारी हो जायेगा। मनुष्य को कभी किसी साधना का स्वयं अवलम्ब नहीं लेना चाहिए। अनुभवी गुरु के द्वारा हठ विद्या को प्राप्त करना चाहिए। हमारा यह प्राचीन भारतीय विज्ञान है –

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा।।

अर्थात् गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या वीर्यवती होती है और पूर्ण फल की दात्री होती है जो विद्या इधर-उधर के प्रयास से या न जानने वाले अनधिकारियों से एवं कर्ण परम्परा से प्राप्त की जाती है, वह विद्या निर्वीर्य रहती है और कई प्रकार के कष्ट पैदा करती है। अतः श्री गुरुदेव के कृपा-प्रसाद और प्रसन्नता से ही विद्या प्राप्त करना चाहिए। विद्या की सफलता में गुरुदेव का आशीर्वाद ही अटल साधन है –

गुरु सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।
अविलम्बेन विद्यायास्तस्या फल मवाप्नुयुः।।

अर्थात् जो लोग गुरुदेव को सन्तुष्ट करके विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, वे लोग अविलम्ब ही उस विद्या को पा जाते हैं एवं सब कार्यों में सफल रहते हैं।

श्री मद्वाल्मीकि रामायण और योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

श्री मद्वाल्मीकि रामायण महर्षि वाल्मीकि कृत संस्कृत वाङ्मय का आदि काव्य है। इसलिए महर्षिवाल्मीकि को वैदिक काल का कवि कहा जाता है। वाल्मीकि रामायण में छः काण्ड हैं। इसमें उत्तरकाण्ड नहीं है। इस रामायण में बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किश्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड और युद्ध–काण्ड हैं। श्री तुलसीकृत राम चरित्र मानस में सातवाँ काण्ड उत्तरकाण्ड अधिक है।

महर्षि वाल्मीकि जी ने एक दिन देवर्षि नारद से पूछा – इन तीनों लोकों में इस समय सबसे अधिक गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवाक् और दृढप्रतिज्ञ व्यक्ति कौन है? शुद्धतम चरित्र वाला, सब प्राणियों का हित करने वाला, बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ, पुण्यश्लोक व्यक्ति कौन है?

महर्षि आगे और पूछते हैं –

आत्मवान को जितक्रोधो द्युतिमान कोऽनसूयकः।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्यसंयुगे।।

अर्थात् इस समय पृथ्वी पर आत्मज्ञ व्यक्ति कौन है? किसने क्रोध को जीत रखा है? कौन दिव्य तेज व बुद्धि से युक्त है? कौन क्रुद्ध हो जाने पर देवताओं के लिए भी भय का कारण बन जाता है। हे देवर्षि मैं उन महापुरुष के विषय में जानना चाहता हूँ जो इस समय इस त्रिलोकी में विद्यमान हैं। देवर्षि नारद कहते हैं – हे मुनि श्रेष्ठ! आपने जिन दिव्य गुणों से युक्त महापुरुष के विषय में पूछा है उसके विषय में बताता हूँ –

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान वशी।।

अर्थात् इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न उन महापुरुष का नाम 'राम' विख्यात है। जो नियतात्मा हैं, महावीर्यवान हैं, धृतिमान तथा द्युतिमान हैं।

वही वश्यात्मा हैं अर्थात् आत्मवशी (योगी) पुरुष हैं वही नीतिवान, वाग्मी, श्रीमान्, शत्रुनाशक, धर्मज्ञ, सत्यसन्धा तथा प्रजा के पालन में रत रहते हैं वही कौशल्या माता के आनन्द को बढ़ाने वाले सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष हैं।

वे ही –

स च सर्वगुणोपेता कौसल्यानन्दवर्धनः।

समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव।

अर्थात् वही राम विष्णु के सदृश वीर्यवान व पराक्रमी हैं। वही समुद्र के समान गम्भीर एवं हिमालय की भाँति स्थिर चित्त हैं। वे कुबेर के समान दानी तथा सत्य के साक्षात्मूर्ति धर्म ही हैं। इस प्रकार से नारद मुनि के श्री मुख से 'राम' जी के दिव्य गुणों की प्रशंसा को सुनकर वाल्मीकि ऋषि प्रसन्न होकर गंगा के पास ही तमसा नदी के किनारे चले गये। वहाँ उन्होंने क्रौंच पक्षी के युगल को देखा। इतने में ही एक व्याध ने आकर क्रौंच पक्षी (पुरुष) पर बाण सन्धान करके मार गिराया। महर्षि का हृदय इस कारुणिक दृश्य के दुःख से विदीर्ण हो गया उनके मुख से क्रोध से भरे शब्द फूट पड़े –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम् अगमशाश्वतीस्समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकम् अवधीः काममोहितम्।।

अर्थात् हे निषाद! तुम्हें हजारों वर्षों तक शान्ति नहीं मिलेगी क्योंकि तुमने काम से मोहित क्रौंच के जोड़े में से एक का वध कर दिया है। अपने मुख से अचानक इस प्रकार के शब्द को निकाल कर महर्षि सोचने लगे – यह मेरे मुख से पादबद्ध अक्षर निकले हैं ये चार पाद में बद्ध हैं। छन्द बद्ध है। शोकार्त प्राणी के हित में यह शब्द निकले हैं इसलिए यह 'श्लोक' है। इतने में ब्रह्मा जी स्वयं प्रकट हो गये और कहने लगे – महामुनि! तुमने वस्तुतः एक श्लोक की रचना की है। मैंने ही सरस्वती देवी को प्रेरणा करके उनके मुख से ये शब्द निकलवाये हैं। तुमने नारदमुनि के मुख से दिव्य गुणों से युक्त जिन महापुरुष के अलौकिक चरित्र को सुना है उसे ही काव्य में निबद्ध करो। जब तक संसार में पर्वत विद्यमान रहेंगे, नदियाँ प्रवाहित रहेंगी तब तक रामायण की यह पवित्र कथा पृथ्वी लोक में प्रचारित होती रहेगी। इस प्रकार से महर्षि वाल्मीकि जी ने इक्ष्वाकुवंश के वंशज श्री राम के दिव्य चरित्र को लिखकर समग्र हिन्दू राष्ट्र को उपकृत किया है।

(क्रमशः)

तुम्हारा अपना कर्म

जो कर्म स्वेच्छा व उत्साह से करते हो वह तो तुम्हारा है पर जो दूसरों की इच्छा व उत्साह से करते हो उसमें दूसरे का भी भाग रहता है।

– श्रुति सार

प्रभू प्रार्थना कैसे करें और कैसे मांगें दैविक सहायता

अनुवादक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी पूर्व विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान
लेखक : स्वामी सुबोधानन्द जी, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धर्म गुरु

जीवन जीने के लिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि आप जिस संसार में रह रहे हैं यह एक जंगल की भांति है जहाँ आपका सामना सभी प्रकार के जानवरों से होगा। आपको वहाँ अपने को सुरक्षित रखने के लिए सावधान रहना होगा। आपको यह भी स्वीकारना होगा कि इन सभी प्राणियों की आत्मा अपनी यात्रा पर है। अतः उन पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए आपको शब्दों की अपेक्षा अपने आचरण से उपस्थिति दर्शानी होगी क्यों कि बुद्धिजीवियों के लिए शब्द कोई मायने नहीं रखते। यदि आप शब्दों से आगे बढ़कर आचरण का रूप भी सामने रखते हैं तो आपकी उपस्थिति का जादुई प्रभाव होगा। आपकी आत्मिक शक्तियों का विस्तार होगा। आपकी चेतना की अदृश्य लहरें दूसरों तक आपकी उपस्थिति का भान करा देंगी। कहा जाता है कि भगवान बुद्ध जहाँ से गुजरते थे वहाँ बिना मौसम के भी फूल खिलने लगते थे क्योंकि उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा बहुत शक्तिशाली थी।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि मैं एक बुरे व्यक्ति को क्यों स्वीकार करूँ? कारण स्पष्ट है कि उसकी उपस्थिति स्वीकारने के अतिरिक्त मेरे पास विकल्प ही क्या है? यदि मैं उसे त्याग भी दूँ तब भी वह इस सृष्टि में रहेगा ही। जब मैं स्वीकारने की बात कहता हूँ तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आप उससे सहमत हों, साथ दें परन्तु उससे लड़ें भी न, बस बचकर रहें। अपूर्णता में भी गुण देखने का प्रयास करें। यह भी देखने का प्रयास करें कि उसकी बुराई भी तुम्हें कुछ सिखाने का संकेत दे रही है, उसकी उपस्थिति बता रही है कि तुम्हें वैसा नहीं बनना है। उसकी बुराई में भी तुम्हारे लिए यह सीख है कि बुरा होना कितना बुरा है।

बात यों समझें कि यदि मेरी सास बुरी है, मुझसे लड़ती है, कठोर शब्द बोलती है – परन्तु अच्छाई यह है कि मेरे साथ नहीं रहती। जब कोई व्यक्ति कठोर शब्द बोलता है, लड़ता है तो समझें कि वह स्वयं घायल है, अंदर से पीड़ित है (वही परोस रहा है जो उसके कुकर में है)। यदि आप यह मानकर चलेंगे तो उसके शब्द आपको पीड़ित नहीं करेंगे। गांधी जी कहा करते थे कि कोई व्यक्ति आपसे आपका आत्मसम्मान नहीं छीन सकता। हमारे सीखने और अभ्यास करने के लिए यह एक अवसर है कि हम, भावनात्मक रूप से, उससे घायल न हों, मानसिक रूप से उद्वेलित न हों क्यों कि उद्वेलित होने से अपनी ही क्षमतायें प्रभावित होती हैं। इसे पुनः यों

समझे कि यदि आपकी सास आप पर चिल्लाती है, आप पर हंसती है, आप पर व्यंग करती है तो उसे एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दे– मन से न सुनें। दयाभाव से सोचें कि उसके मन में कितना अन्तरद्वंद चल रहा है जिसे आप नहीं जानते अतः उसके प्रति उदार हों (**अनुवादक की टिप्पणी** – स्वामी जी का यह कहना जितना सरल लगता है व्यवहार में लाना उतना ही कठिन है।)

स्वामी जी पुनः लिखते हैं कि यदि कोई पत्थर खुले में फेंका जाय तो निकल जाता है परन्तु यदि दीवार हो तो टकराता है। उसी प्रकार हमारे अहं (ईगो) से उसके शब्द टकराते हैं। अतः अपने अहं की दीवार गिराने का प्रयास करें। अपनी सुख शान्ति का यही मार्ग है (**अनु. की टिप्पणी** न कीजे रार नीचन सों)। यदि आप निन्दा में भी आनन्द लें –ऐंजाय करें जो अभ्यास से संभव है। कठिनाई है तो हमारा अहं जो हमेशा आड़े आता है। उन कार्यों का अभ्यास करें जिन्हें अहं नहीं चाहता। यह प्रक्रिया मंद गति की है परन्तु लाभप्रद है।

हमें व्यक्तित्व को लचीला बनाना ही सीखना है और वह भी सरल भाव से। प्रार्थना करके ईश्वरीय सहायता की उस प्रभु से याचना करनी है। यह सरल कार्य है। यह सहायता अवश्य प्राप्त होती है क्यों कि प्रभु हमारी सहायता के लिए सदैव तैयार बैठे होते हैं (**आप पुकारें तो गज की भांति**) परन्तु पुकारना तो हमें ही है।

।इति शुभम्।

जनमानस में से दुष्प्रवृतियों को हटाकर उनके स्थान पर सद्प्रवृतियों की स्थापना करना अत्यन्त ही उच्च कोटि का एवं महत्वपूर्ण कार्य है। पूर्व काल में लोकनायक तथा मार्ग–दर्शक ऋषि–मुनि गण आत्म–शक्ति से सम्पन्न थे। वे केवल वाणी से ही नहीं अपनी आन्तरिक महानता की किरणें फेंककर जनमानस को प्रभावित करते रहे। मस्तिष्क की वाणी मस्तिष्क तक पहुँचती है तथा आत्मा की आत्मा तक। कोई सुशिक्षित व्यक्ति अपनी ज्ञान–शक्ति का लाभ सुनने वालों को उनकी जानकारी बढ़ाने के लिए वाणी द्वारा देता है। किन्तु अन्तःकरण में जमी हुई आस्था में परिवर्तन का कार्य ज्ञान से नहीं आत्म–शक्ति से ही सम्पन्न हो सकता है। प्राचीन काल के ऋषि–मुनि इस तथ्य को भली–भाँति जानते थे। इसीलिए वे दूसरों को उपदेश देने में वाणी द्वारा सेवा करने में कम तथा अपना आत्म–बल में अधिक समय लगाते थे, तपस्या करते थे।

भक्तों को श्री महाप्रभुजी के सिद्ध संकल्प में आना

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

हिमालय के महासिद्ध सिद्धेश्वर योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी का जन कल्याणार्थ संसार में प्रादुर्भूत होना व संसार के जंजालों के मध्य विराजित रहना और सांसारिक इच्छाओं वाले प्राणियों को अमर सिद्धयोग मार्ग का पथिक बनाकर परित्राण देना महान आश्चर्यमय एवं सृष्टि का आलौकिक कार्य है। उनको कोई आवश्यकता नहीं थी ऐसा सब करने की वह तो सदा से स्वयं सिद्ध सिद्धेश्वर हैं। जब उनका कोई चिन्तन भजन करता है। तब भी वही परम तत्व है और अगर कोई नहीं करता है तब भी वही परम तत्व नित्य रहते ही हैं। जीव यदि उन महा सिद्ध सिद्धेश्वर का किसी भी रूप में चिन्तन करता है तो उस जीव का अवश्य ही परम कल्याण हो जाया करता है और वह उस मंजिल पर पहुँच जाया करता है जिसके विषय में विचार करने की योग्यता भी श्री गुरु चरणों में आने से पूर्व उसके पास नहीं होती।

श्री महाप्रभु जी के प्यारे भक्तों तुम अपने महाप्रभु जी का अहर्निश चिन्तन करो पूर्णतः समर्पित कर दो अपने को उनके पावन श्री चरणों में। कट्टर भक्त बन जाओ श्री महाप्रभु जी के, अपनी सकल शुभ भावनाएँ, सेवा, भक्ति, चिन्तन कीर्तन, जप, ध्यान आदि आदि सभी दिव्य साधन समर्पित कर दो अपने श्री महाप्रभु जी के पावन श्री चरणों में सारे बाह्य आडम्बर एवं ढोंग त्यागकर अन्दर की दुनिया में प्रवेश करो। श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी का हुक्म है कि श्री रामलाल महाप्रभु जी के पावन स्वरूप के सामने ध्यान में बैठा करो, वह सब होने लग जाएगा जो तुम्हें नर से नारायण बनाकर ही छोड़ेगा, अन्दर की शक्ति जग जाएगी जो श्री महाकुण्डलनी नाम से सम्बोधित होती है। शक्ति के प्रबोध हो जाने पर शिवत्व का बोध प्राप्त करता हुआ शिव रूप ही हो जाता है। ऐसा है हमारा सिद्धयोग मार्ग जिसके अन्तर्गत शिवत्व का बोध कराकर मोक्ष की ओर ले जाया जाता है। इसमें श्री महाप्रभु जी ही देवता है उनकी वाणी ही मन्त्र है श्री महाप्रभु जी का ही ध्यान उनका स्वरूप ही ब्रह्म है, क्योंकि श्री महाप्रभु जी ही परब्रह्म् अनादि परम तत्व श्री सद्गुरु तत्व के साकार विग्रह हैं यानि मानव रूप में पधारे हुए महाशिव हैं। सिद्ध सिद्धेश्वरों का यह मार्ग है जिसकी चर्चा सभी धर्म ग्रंथों में पाई जाती है इसकी अजपा विद्या की प्रशंसा उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में भी भरी पड़ी है। अजपा विद्या दान के पश्चात् सिद्ध–सिद्धेश्वरों की कक्षा में जो विद्यार्थी परिश्रमी, संस्कारी, समर्पित होते हैं उनको रात दिन इसकी पढ़ाई बाहर और अन्दर से निरन्तर चलाई जाती है उसकी पात्रता बढ़ जाने पर उसके पास आगे का मार्ग

प्रशस्त करने के लिए व्यक्ति विशेष भेजे जाते हैं उससे सम्बन्धित पुस्तकें उपलब्ध कराई जाती हैं। दिव्य शक्ति संचार प्रेषित किया जाता है जगह–जगह और तरह–तरह से उसका मार्ग दर्शन कराया जाता है यह सारा कार्य स्वयं अदृश्य रूप में रहकर भी सद्गुरु परम शक्ति स्वयं और नित्य स्पष्ट रूप से करती रहती है। सामान्य जन इसे बिल्कुल भी पहचान नहीं सकते परन्तु संस्कारी एवं विशेष गुरुकृपा पात्र जीव अवश्य ही सब समझ जाते हैं और सद्गुरु महाशक्ति के लीला एवं कृपा विलास को नित्य देखते रहते हैं। इसी कोर्स के अन्तर्गत सिद्ध आचार्यो का निर्माण किया जाता है इन्हीं सिद्ध आचार्यों द्वारा ही आगे सिद्धयोग की अमर बेल सिद्धयोग के साधकों तक पहुँचाई जाती है जिससे सिद्धयोग के साधक बोध प्राप्त करते हैं। दूसरा एक और सरल साधन है सिद्ध सिद्धेश्वरों के सिद्ध संकल्प में आ जाना। सिद्धों के संकल्प में आ जाने से श्री जीवन में चमत्कार पैदा हो जाता है। जीवन की दिशा और दशा ही बदल जाती है जो कुछ भी नहीं होते वो बहुत कुछ बन जाते हैं। कभी–कभी सब कुछ बन जाते हैं। हमारे लिए सिद्ध सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी के सिद्ध संकल्प में आ जाना ही परम लक्ष्य है आगे वह परम सिद्धेश्वर महाशक्ति अपने आप आगे का कार्य करा लेगी। महासिद्ध सिद्धेश्वर योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु के सिद्ध संकल्प में यदि जीव आ जाये तो उसका परम कल्याण निश्चित है उनके सिद्ध संकल्प में कैसे आया जाता है यह बात निम्न प्रकार से अवश्य बुद्धि का विषय बन जाएगी।

(1) श्री सद्गुरु देव जी की किसी भी आज्ञा का पालन करके –

"गुरु आज्ञा ना उल्लंघनीया" श्री गुरुदेव आज्ञा का किसी भी रूप में कभी मन से भी उल्लंघन का विचार नहीं करना चाहिए बल्कि सदैव गुरु आज्ञा पालन करना चाहिए श्री सद्गुरुदेव जी से कोई बात नहीं छिपानी चाहिए और न ही उनके सामने कभी असत्य ही बोलना चाहिए असत्य बोलकर भी सत्य नहीं छिपाया जा सकता क्योंकि श्री सद्गुरुदेव सर्वज्ञ होते हैं। कहा भी है 'असत्य च कदाचन'। इसके अतिरिक्त श्री सद्गुरुदेव कभी किसी को कोई विशेष श्री मुख से दे देते हैं तो शिष्य बालक सदा तन, मन, धन से उसका पालन करें बहुत से भाईयों को सत्संग संचालन, योग प्रचार, जप अनुष्ठान, ध्यान, स्वाध्याय आदि की आज्ञाएँ कुछ को आगतम् व्यवस्था, उत्सव प्रबंध व्यवस्था आदि आज्ञाएँ दी थी कुछ भक्तों ने जीवनभर एवं अनेक जन वर्तमान में भी ये सारी आज्ञाएँ पालन कर रहे हैं। श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा पालन यदि जीव हजार कोस दूर बैठकर भी करता है तो श्री सद्गुरु परम शक्ति उसका वहीं बैठे–बैठे भी कल्याण कर देगी और साधक जन अनायास ही उनके सिद्ध संकल्प में आ जाएँगे।

(2) जीवन तत्व साधन आदि योग क्रियाएँ करके –

महाप्रभु श्री रामलाल जी के समय से बराबर यह भक्तों के देखने में आ रहा है कि गंभीर से गंभीर रोगी भी करुणामय श्री महाप्रभु जी के श्री चरणों में आकर जीवन् तत्व आदि साधन या जो भी यौगिक क्रियाओं का आदेश श्री महाप्रभु जी रोगियों के लिए करते थे वह जीवन तत्व जैसे साधारण क्रियाओं से भी असाध्य से असाध्य रोग दूर हो जाते थे ये सब क्या था? ये था उन सर्व शक्तिमान महाप्रभु की आज्ञा पालन करते हुए उनके सिद्ध संकल्प में आ जाना और अतिशय दिव्य लाभ लेना यह उनके संकल्प में आ जाने का ही फल है।

(3) श्री सिद्धगुफा की रज का सेवन करके –

श्री गुरुदेव जी का हुक्म है जो सिद्धगुफा की रज का सेवन करके ध्यान में बैठते हैं उनके मन की एकाग्रता बन जाएगी और अभ्यास करते–करते ध्यान लग जाएगा और रोग दोषों का निवारण हो जाएगा। जब सारी दवाईया फेल हो जाती हैं तो श्री सिद्धगुफा की रज चमत्कारिक लाभ दिखाया करती है इसके उदाहरण अनेकों हमारे जीवन में है। एक उदाहरण देते हैं हमारे पुत्र दिव्यांश को सभी डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था मृत्यु सामने थी कुछ भी नहीं सूज रहा था हमने तुरन्त श्री महाप्रभु जी की गुफा की रज को नवजात बच्चे के मुख में डालकर श्री सद्गुरुदेव जी का स्मरण करके प्रार्थना कर दी। कुछ घण्टे के भीतर ही भारी चमत्कार हुआ बच्चे में आश्चर्य जनक सुधार होना शुरू हो गया और अगले दिन छुट्टी कराकर घर ले आए। यह सब श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा दिए हुक्म का पालन करके उनके सिद्ध संकल्प में आ जाने के कारण से ही सम्भव हुआ। अमृत कुण्ड को रोग निवारण के लिए श्री रामलाल महाप्रभु जी का वरदान है। हमने एक गैंगरीन के मरीज को जिसकी टॉग काटने का डॉक्टर ने आदेश दे दिया था सबको लगता था इसके अलावा कोई रास्ता नहीं हमने अमृतकुण्ड की रज का सेवन करया तो इतनी भयंकर गैंगरीन बिल्कुल ठीक हो गई।

(4) श्री गुरुदेव जी द्वारा रचित ग्रन्थों का स्वाध्याय –

करुणामय श्री सद्गुरुदेव जी ने दया करके योग सिद्धान्तों पर अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें सिद्धयोग मार्ग की गूढ़ता को निज अनुभवों एवं शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रमाण के साथ अति सरल करके समझाने का भागीरथ प्रयास किया अपने सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी के जीवन चरित्र एवं उनसे सम्बन्धित भक्तों के चरित्र व अपने योगी गुरुभाईयों के चरित्र बड़े ही मार्मिक एवं सम्मानित ढंग से लिखे। उनके द्वारा रचित साहित्य का स्वाध्याय करके साधकों की योग में प्रीति बढ़ेगी और योगी बनने के लिए मार्ग आलोकित होगा। उनका आदेश है कि इन सद्साहित्य को पढ़ो और योगी बनो उनके द्वारा रचित योग साहित्य का स्वाध्याय करने से भी हम उनके सिद्ध संकल्प में आ जायेंगे और उनके वरदान स्वरूप जैसा कि

उन्होंने ''समाधिस्था योगनियां'' में कहा भी है इनको पढ़कर तुम्हारी योग में प्रीति बढ़ेगी।

(5) सद्गुरुदेव जी के सिद्धयोग मार्ग का अनुसरण करके –

अष्टांग योग, क्रिया योग, सांख्य योग आदि का अभ्यास करके, हठयोग की प्रक्रियायें जैसे नेति प्राणायाम आदि करके योग के साधन करते–करते भी उनके सिद्ध संकल्प में जीव आ जाता है। वह करूणामय देख लेते हैं योग के साधक को, जैसे पूज्यपाद देवरहा बाबा को खेचरी साधन करते हुए महाप्रभु श्री रामलाल जी ने देख लिया था और तत्काल ही उनकी खेचरी क्रिया सिद्ध करा दी थी।

(6) सद्गुरु देव जी का मन्त्र जाप एवं ध्यान करके –

प्राय: मन्त्रों के स्वरूप को अर्थ सहित समझाकर उसकी जप विधि समझाकर उसकी जप विधि बताना ही मंत्र दीक्षा कहलाती है। यदि सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी द्वारा प्रदत्त किसी भी मन्त्र का तीव्र संवेग से अनुष्ठान पूर्वक जपने से सद्गुरुदेव की कृपा दृष्टि हो जाया करती है और सोई शक्ति जाग्रत होने लगती है। हम अपनी सद्गुरु परम्परा का ध्यान करेंगे तो जिनका मन एकाग्र नहीं भी होता है तो भी हो जायेगा क्योंकि सर्वशक्तिमान स्वयं ही इस रूप में जगत में पधारे हैं। और योग शास्त्रों का प्रमाणिक सिद्धान्त भी है 'वीतराग विषयं वा चित्तम' वीतराग महापुरुषों का ध्यान करने से ध्यान समाधि लाभ होता है।

उपसंहार – सर्वशक्तिमान महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी परम सद्गुरुतत्व का साकार विग्रह हैं। हम जीवनभर साधन करते हुए जिस ईश्वर की कामना करते रहते हैं वह वरदान सहित हमें इस रूप में प्राप्त हो गये हैं। सद्गुरुदेव की प्राप्ति से ही ब्रह्म की प्राप्ति एवं उसमें तद्रूपता सम्भव हो सकती है सद्गुरु देव ही जीव को **''समाधि समतावस्था जीवात्मा परमात्मन:''** बनाकर ही छोड़ते हैं। ऐसे परिपूर्ण, परम तत्व, परब्रहम महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी को पा लेने के बाद भी अब जाने कौन से भगवान पाने शेष रह गये जो उनके भक्तजन दर–दर मारे–मारे घूमते हैं कि कहीं से कुछ मिल जाये। जैसे हिरन के पास कस्तूरी होने पर भी वह उसे पाने के लिए जंगल दर जंगल मारा–मारा घूमता है। भक्तों अपनी मनोदशा को सुधार कर सर्वशक्तिमान महाप्रभु जी का अहर्निश चिन्तन करते हुए उनकी आज्ञाओं का अक्षरश: पालन करो। जो सोचा भी नहीं है वो सम्पूर्ण जीवन का कल्याण करके ज्योतिर्मय बनाकर चमका देंगे जो परम प्रकाश इहलोक और परलोक दोनों जगह काम आयेगा। आगे जहाँ भी जन्म होंगे सबमें जगमगाहट रहेगी।

अनन्त विभूषित परम पूज्यनीय श्री गुरुदेव महाराज द्वारा हमें चमत्कारी ढंग से इन्दौर से ऋषिकेश बुलाना और चमत्कारी तरीके से ही योग सिद्ध आश्रम में बुलाकर दीक्षा देना

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर

परम पूज्यनीय पतित पावन करतार, योगेश्वर, सिद्धेश्वर पारब्रह्म परमेश्वर सर्व शक्तिमान महाप्रभु सद्गुरुदेव की असीम कृपा के फलस्वरूप हृदय अपनी लिपिबद्ध करने के लिए हर्षातिरेक से आगे बढ़ा। जन्मजन्मान्तर के तिल–तिल एकत्र पुण्य प्रताप का प्रतिफल ही संत शिरोमणि योग योगेश्वर प्रभु जी की अपार कृपा लीलावश योगीराज अनन्त विभूषित पतित पावन करतार परम पूज्यनीय वंदनीय गुरुजी महाराज का अप्रतिम वरदहस्त हमें मिला। हमारा मानव जीवन सफल हुआ। वह पल जीवन का अनमोल क्षण बन गया। उस पल ने हमारे जीवन की धारा प्रवाह को ही मोड़ दिया। जीवन जीने की कला सीखा गया। वह चिरस्मरणीय दिवस–क्षण अनमोल पल सदा सतत–सतत अविरल पवित्र धारा के रूप में दिल दिमाग में गतिमान है। जैसे ही उस क्षण की याद आती है पूर्ण दीक्षा प्रसंग आँखों के आगे सजीव हो जाता है। हम अति पतित अधमों को भी पावन शीतल भक्ति रस में सराबोर कर गया।

यह प्रसंग 10 मई 1986–87 का ऋषिकेश का है जो सदैव हमारे जेहन में बसा रहेगा। हमें यह अनमोल खजाना कैसे प्राप्त हुआ इसकी भी बहुत ही रोचक कथा है। हम मैं शारदा सिसौदिया मेरे पति श्री सज्जन सिह सिसौदिया इन्दौर (म.प्र.) के रहने वाले हैं। मेरे पति सज्जन सिह सिसौदिया टेलीफोन विभाग में सीनियर सुपरवाइजर थे। अब वे हमारे बीच नहीं हैं। 2009 अप्रैल में सवाई में प्रभुदेव का जन्म दिवस बहुत ही उत्साह से मनाया। पश्चात् 23 मई 2009 में शनिवार शनैश्चरी अमावस्या को उनका देहावसान हो गया। जैसा उनका नाम वैसा ही उनका सरल सौम्य स्वभाव था। टेलीफोन विभाग में हर तीसरे वर्ष कर्मचारी को यात्रा भत्ता सरकार देती है। उसी का लाभ हम लोगों ने चारों धाम की यात्रा में लिया। उसी यात्रा में हमने 1986–87 मई में गुरु पूर्णिमा के अवसर पर ऋषिकेश में ठहरने का मन बनाया। यही ठहर कर हमने श्री केदारनाथ+श्री बद्री विशाल जी की यात्रा का लाभ लिया। आगे हमको उटी जाना था सो ऋषिकेश में ठहरने का विचार आया। अब देखिए आगे सभी प्रसंगों को रचाने वाले महाप्रभु गुरुदेव भगवान ही हैं। हमारे साथ हमारी दो बेटियां भी थीं। हम चारों अग्रवाल धर्मशाला स्टेशन रोड ऋषिकेश में ठहरे। यह धर्मशाला सिद्धयोग केन्द्र ऋषिकेश आश्रम के बिल्कुल नजदीक है। अब देखिए अनन्त अविनाशी जन–जन हितकारी करूणानिधान ने क्या खेल रचा। गौर फरमाईये 1986–87 में ऋषिकेश छोटा सा शहर था। अब अच्छी बसाहट वाला हो गया है। हम जिस अग्रवाल धर्मशाला में ठहरे उसमें इन्दौर के ही मिश्राजी भी थे। वह गुरु पूर्णिमा मनाने हेतु

आये थे। उन्हें नीचे का कमरा मिला था। हम ऊपर की मंजिल पर ठहरे थे। नीचे कोई कमरा खाली नहीं था। दोनों बच्चियों का और मेरे पति का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। स्वाति (छोटी बेटी) का पेट खराब था, बड़ी (रश्मि) को तेज बुखार था। मेरे पति को हार्निया की तकलीफ थी मैं बहुत चिंतित थी। मेरे पति 1984 दिसम्बर में दिल का दौरा पड़ा था, लेकिन प्रभुदेव जी की कृपा तो हम पर जन्म लेने से ही शुरू हो गई थी। उन्हीं की अपार कृपा से इतने भयंकर हृदयाघात से स्वस्थ हो गये थे। अब मुझे लगता है कि गुरुदेव तो जन्मजन्मांतर तक अपने बच्चों के साथ रहते हैं। उनकी कृपा से बड़े से बड़ा दुख भी सूक्ष्म रूप हो जाता है। प्रभु जी की आज्ञानुसार अनन्त विभूवित गुरुदेव ने अपने संस्कारी बच्चों को ढूंढ निकाला और अपने सानिध्य में ले आये।

हम ऋषिकेश में ठहरे थे। सुबह नौ या दस बजे का समय होगा। हम चाय नाश्ते के लिए बाजार में थे कि यकायक दुकानें बन्द होने लगीं। बाजार में अफरा-तफरी मच गई। पता चला कि विद्यार्थियों और पुलिस वालों में किसी बात पर झगड़ा हो गया है। कर्फ्यू लग गया। बाजार बन्द हो गये। हमें चाय, नाश्ते और भोजन की परेशानी से गुजरना पड़ा। हम अपनी धर्मशाला में आये। हमें बच्चों की भी चिन्ता थी कि अब क्या होगा। चाय, नाश्ता भोजन और दवाई की भी परेशानी होगी। हम अपने कमरे में विचार कर रहे थे कि अब क्या किया जाए। इतने में धर्मशाला में सफाई का काम करने वाला 10–12 वर्ष का लड़का आया। वह बोला आंटी चिंता मत करो पास में बहुत पहुँचे हुए महात्मा जी आये हैं। उनका प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा पर आश्रम में भंडारा होता है। सबके लिए खुला है। आप लोग उस भोजन प्रसादी का आनन्द लीजिए। देखिए गुरु महाराज ने किस प्रकार हमें अपने नजदीक बुलाया। हमें कोई अदृश्य शक्ति अपनी ओर खींच रही थी। हम आश्रम गये। वहाँ भारी भीड़ थी। भोजन प्रसादी का कार्यक्रम चल रहा था। सो हम दोनों (पति+पत्नि) ने बैठकर बड़े प्रेम से अपनी क्षुधा शान्त की। बहुत ही तृप्ती मिली। ऐसे रस की अनुभूति जीवन में पहली बार अनुभव की।

मैं एक बात बता दूँ कि मैं साधू सन्यासी में विश्वास नहीं करती थी। भोजन के बाद ऐसी लहर जागी कि उन महात्मा जी के दर्शन अवश्य करना चाहिए। हम महात्मा जी के दर्शन के लिए आगे बढ़े। देखा वहाँ भक्तों की भारी भीड़ है। सभी उन्हें प्रणाम कर अपनी यथाशक्ति भेंट दे रहे थे। मैं भी दूर खड़ी सब देख रही थी। मन में विचार आया इन्हें प्रणाम कर भेंट दें। लेकिन बाजार बन्द है। हम कुछ फल आदि का इंतजाम भी नहीं कर सकते। हम चिन्ता में डूबे थे कि इतने में बहुत ही रस भरी मीठी आवाज सुनाई दी अरे मुनिया क्या सोच रही है? कल तुम दोनों (मैं और मेरे पति) सुबह जल्दी स्नान कर आ जाना। फूल नहीं तो फूल की पखुड़ी ही लेकर आना। तुम्हारी दीक्षा होनी है। मेरी आँखों से खुशी के आँसू टपक पड़े। जीवन में पहली बार इतनी मधुर वाणी का अहसास हुआ। मैं खुशी से बावरी हो गई। हम दोनों ने दण्डवत् प्रणाम किया। वह क्षण जीवन का विलक्षण आनन्दातिरेक से भरा हुआ सरस अमूल्य क्षण था।

गुरुदेव के अपनत्व ने हमारी झिझक दूर कर दी। मैंने कहा महाराज जी दोनों बच्चियाँ बीमार हैं मेरे पति का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। रश्मि को तेज बुखार है, स्वाति को दस्त लगे हैं हमें चिंता है आगे की यात्रा कैसे होगी। गुरुदेव ने ध्यान से सुना फिर अपने गले में गेंदे के फूलों से बना हार पहने थे उसमें से कुछ फूल तोड़े और कहा मुनिया ये फूल जिस बच्ची को बुखार है उसके तकिए के नीचे रखना और जिसका पेट गड़बड़ है उसे यह फूल सूँघने के लिए देना। हमने कमरे पर आकर वैसा ही किया। रश्मि जिसे बुखार था, थोड़ी देर में पसीना आया और बुखार उतर गया। स्वाति का भी स्वास्थ में सुधार आया। सिसौदिया जी भी वाजपेयी भाईजी के बताये आसन से हार्निया के दर्द से मुक्त हुए।

मैंने अनुभव किया कि यह महात्मा जी अंतर्यामी हैं। घट–घट की बातों को जानते हैं। इनमें चमत्कारिक शक्ति है। यह कोई मामूली इंसान नहीं, यह तो साक्षात् भगवान हैं। हमने निश्चय किया कि इतना सुनहरा अवसर नहीं छोड़ेंगे। दूसरे दिन सुबह जल्दी स्नानादि से निवृत्त होकर गुरु महाराज की आज्ञानुसार दीक्षा के लिए उनकी शरण में पहुँच गये। हमारी दीक्षा सानन्द पूर्ण हुई। वह पल आज भी हमारे दिल दिमाग पर छाया हुआ है। गुरुजी ने सफेद झक धोती कुर्ता धारण किया हुआ था। एकदम शान्त धीर वीर गंभीर मुद्रा में कभी शिव तो कभी मुस्कुराते कृष्ण, कभी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम दिख रहे थे। उस आनन्दानुभूति की भावाभिव्यक्ति के लिए शब्दों ने अपनी असमर्थता प्रगट की है। अनन्त विभुषित गुरुदेव जी के सानिध्य का प्रभाव स्वयं सिद्ध है। सिद्धि को सापेक्षता की आवश्यकता नहीं। मैं इस योग्य तो नहीं कि पावन–स्मृति को शब्दों में रेखांकित कर सकूँ। वह क्षण जीवन की अमूल्य निधि बन गया। हमारा जीवन संवर गया हमें जीवन जीने का आधार मिल गया।

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि गुरुदेव के शिष्य अनिल कुमार शर्मा जी, दारागंज, इलाहाबाद का देहावसान 9 मार्च, 2014 को हो गया है। वे गुरु जी के पुराने शिष्यों में से एक थे। अनिल जी के परिवार को आश्रम परिवार इस दुःख की वेला पर हार्दिक दुःख व संवेदना प्रकट करता है। श्री प्रभु जी दुःखी परिवार के बच्चों को दुःख सहने की क्षमता दें व दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

– संपादक 'सिद्धयोग'

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

शैव तंत्र योग में वर्णित है कि अत्यन्त क्रोधावेग में भी मनुष्य को आत्म स्पन्दन का बोध हो सकता है। इसी सिद्धान्त को पोषण करने वाला श्लोक स्कंध 3 अध्याय सोलह में वर्णित है –

एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः
संरम्भसम्भृतसमाध्यनुबद्धयोगौ।
भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः,
शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः।।

।। 26 ।। अ.16, स्क. 3,

भगवान ने कहा – मुनिगण! आपने जो श्राप इन्हें (पार्षदों) दिया है, वह मेरी ही प्रेरणा से हुआ है। ये शीघ्र दैत्ययोनि को प्राप्त होंगे। क्रोधावेश से बढ़ी हुई एकाग्रता के कारण सुदृढ़ योग सम्पन्न होकर फिर जल्दी ही मेरे पास लौट आयेंगे।

उपरोक्त श्लोक का सैद्धान्तिक पक्ष विस्तार से तंत्र–योग के ग्रंथों में वर्णित है। अस्तु! हम पुनः भागवत के उन स्थलों पर विचार करते हैं जहाँ योग परिचर्चा की गयी है। यह सत्य है कि भगवान की माया अत्यन्त दुस्तर है। योगीजन भी बड़ी कठिनता से जान पाते हैं।

योगेश्वरैरपि दुरत्ययोगमायः।

इस अध्याय के प्रथम श्लोक में सनकादिक मुनियों को योगनिष्ठ विशेषण दिया गया है–

इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम्।
प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः।।

।। 1 ।। स्कन्ध 3 अ. 16 ।।

भगवान हरि द्वारा मुनियों की प्रशंसा करने पर संकोच युक्त मुनियों ने कहा – प्रभो! आपके कृपा से निवृत्ति – परायण योगीजन सहज में मृत्युरूप संसार सागर से पार हो जाते हैं, फिर भला, दूसरा कोई आप पर क्या कृपा कर सकता है –

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात्।
योगिनः स भवान् किं स्विदनुगृह्येत यत्परैः।। 9।।

आगे सत्रहवें अध्याय में हिरयणकशिपु एवं हिरण्याक्ष के जन्म एवं तप तथा दिग्विजय की कथा भगवान मैत्रेय ने श्री विदुर जी को सुनाया है। अट्ठारहवें अध्याय में वाराह भगवान का हिरण्याक्ष के साथ हुए युद्ध का लोमहर्षक विवरण आया है। एक स्थल पर हिरण्याक्ष द्वारा

चलाई गदा के वार को वाराह भगवान थोड़ा टेढ़े होकर बचा लेते हैं, जैसे सिद्ध पुरुष मृत्यु के आक्रमण से अपने को बचा लेता है।

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि।

अवञ्चयात्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम्।।

।।5।। स्क. 3 अ. 18

देवता डरे हुए कहने लगे – प्रभो! आपकी जय हो, इसे और न खेलाइये, शीघ्र ही मार डालिये। भगवान द्वारा बध किये जाने पर हिरण्याक्ष ने अपने प्राण कैसे त्यागा, वर्णन पठनीय व चिन्तनीय है –

यं योगिनो योगसमाधिना रहो

ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया।

तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो

मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह।। 22।। स्कं. 3 अ 19

आगे बीसवें अध्याय में ब्रह्मा जी द्वारा पितरों, देवों एवं ऋषियों के उत्पत्ति की कथा कही गयी है कि कैसे आदि ऋषि ब्रह्मा जी ने इन्द्रिय संयम पूर्वक, तप, विद्या, योग और समाधि से सम्पन्न हो अपनी प्रिय संतान ऋषिगण की रचा की और उनमें से प्रत्येक को अपने समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या और वैराग्यमय शरीर का अंश दिया –

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना।

ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः।। 52।।

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः।

यत्तत्समाधियोगर्द्धितयोविद्याविरक्तिमत्।। 53।। स्कं. 3 अ. 20

इसलिए ऋषियों को जन्मना तप, योग, ऐश्वर्य, समाधि स्वतः प्राप्त है।

आगे मैथुन धर्म से प्रजा वृद्धि की कथा कही गयी है। स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद की कथा के साथ भगवान मनु की पुत्री देवहूति जो ऋषि कर्दम से ब्याही गयी थी उनकी गाथा अलौकिक योगपरक वर्णित किया गया है।

विदुर जी ने महामना मैत्रेय जी से पूछा – देवहूति योग परायणा से महायोगी कर्दम जी ने कितनी सन्तानें उत्पन्न की? यह प्रसंग कृपया मुझे सुनाइये, मुझे सुनने की बड़ी इच्छा है –

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः।

ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रुषवे वद।। 4।।

स्क. 3 अ. 21

सत्ययुग के आरम्भ में पिता ब्रह्मा जी के आदेश से भगवान कर्दम जी ने एकाग्र चित्त से

तप पूर्वक श्री हरि का स्मरण किया। भगवान उन्हें शब्दब्रह्ममय स्वरूप से मूर्तिमान होकर दर्शन दिये। कृत–कृत्य हुए कर्दम जी ने बड़ा तात्विक स्तुति भगवान का किया – हे परमेश्वर! आप सम्पूर्ण सत्वगुण के आधार हैं। योगीजन उत्तरोत्तर शुभ योनियों में जन्म लेकर अन्त में योगस्थ होने पर आपके दर्शन पाते हैं, आज आपका वही दर्शन पाकर हमें नेत्रों का फल मिल गया –

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः
सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः।
यद्दर्शनं जन्मभिरीडय सद्भि–
राशासते योगिनो रूढयोगाः।। 13।। स्कं 3 अ. 21

आगे कर्दम जी कहते हैं – भगवन! जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही जाले को फैलाती, उसकी रक्षा करती और अन्त में उसे निगल जाती है उसी प्रकार आप अकेले ही जगत की रचना हेतु अपने से अभिन्न अपनी योगमाया द्वारा स्वयं ही रचते, पालन करते और संहार करते हैं।

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया–
द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे
यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः।। 19।। स्कं 3 अ. 21

कर्दम जी के स्तुति से प्रसन्न होकर अनेक वरदान देते हुए भगवान हरि बोले – महामुने! मैं भी अपने अंश–कला–रूप से तुम्हारे वीर्य द्वारा तुम्हारी होने वाली पत्नी देवहूति के गर्भ से अवतरित होकर सांख्यशास्त्र की रचना करूंगा। यही भगवन के अवतार कपिल मुनि होंगे।

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्।। 32।।

यह सम्भाषण सरस्वती नदी से घिरे बिन्दुसर–तीर्थ पर हुआ। भगवान के सिद्धमार्ग की सभी सिद्धेश्वर प्रशंसा करते हैं।

आगे बाइसवें अध्याय में महाराज मनु व सतरूपा कर्दम ऋषि से आग्रह करते हैं कि हमारी कन्या देवहुती से विवाह कर लें। कर्दम मुनि ने महाराजप्रभु से कहा – राजन! आपकी इस साध्वी कन्या को अवश्य स्वीकार करूंगा परन्तु मेरी एक शर्त है कि जब तक देवहुती को सन्तान न हो जायेगी तभी तक मैं गृहस्थ रहूंगा। इसके पश्चात् जिनसे इस विचित्र जगत की उत्पत्ति, जो इसके आश्रय तथा जिनमें यह लीन हो जाता है, उन भगवान की आराधना मैं सथस्थ होकर करूंगा। शर्त मानकर श्री मनु जी ने अपनी कन्या का दान महर्षि को कर दिया।

तेइसवें अध्याय में श्री कर्दम ऋषि के योगबल का परिचय एवं दिव्य भोगों में रमण करते

हुए भी श्री प्रभु आश्रित भाव का वर्णन किया गया है।

बहुत दिनों तक एक निष्ठ भाव से साध्वी देवहुती ने कर्दम मुनि की बड़ी तत्परता से सेवा करती रहीं। कर्दम मुनि प्रसन्न होकर बोले – तुमने अपनी सेवा एवं भक्ति से मुझे प्रसन्न कर लिया है। अतः मुझे धर्म पालन करने से, तप से, समाधि से, योग से जो विभूतियाँ प्राप्त हुई हैं उन पर अब तुम्हारा भी अधिकार होगा। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, उन्हें देखो। उनका भोग करो।

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तः समाधि–

विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः।

तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्

दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान।।

।। 7 ।। स्क. 3 अ. 23

देवहुती अपने पतिदेव के इस प्रकार कहने से निश्चित हो गई। अपने पतिदेव को सम्पूर्ण योग माया और विद्याओं में कुशल जानकर अति प्रसन्न हुई। वे ससंकोच विनय वाणी में बोली–स्वामिन! मैं जानती हूँ कि कभी निष्फल न होने वाली योगशक्ति और माया पर अधिकार रखने वाले आपको ये सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं, अब समय आ गया है कि आप मेरे साथ गृहस्थ सुख का उपभोग कर संतान प्राप्त करें –

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमाया,

विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत्।

सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्–

व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाऽऽह।।

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघ योग–

मायाधिपे त्वयि विभोतदवैमिर्भतः।

यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदंगसंगो

भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम।।

श. 9–10, स्क. 03, अ. 23

श्री सद्गुरु को करें हम नमन

– 'कुँवर' अनिल कुमार सिंह, एडवोकेट, कछवा, मीरजापुर

आध्यात्मिक जगत में भूतभावन सदाशिव भगवान, माँ जगदम्बा पार्वती जी को 'श्रीगुरुगीता' महामन्त्र के माध्यम से जो उपदेश देते हैं, वह साधकों हेतु प्राण चेतना का स्रोत है। इसमें उपदेशित महामन्त्रों से नवप्राण मिलते हैं वहीं आत्मतत्व का अंकुरण होता है। जहां ब्रह्मविद्या प्रवाहित होती है वे यह सत्य जानने में समर्थ हो पाते हैं कि श्री गुरुदेव ही सदाशिव हैं। अतः सद्गुरु और इष्ट में कोई भेद नहीं है। निराकार परब्रह्म परमेश्वर की अनन्त सर्वव्यापी चेतना ही श्री सद्गुरुदेव भगवान की करुणामय रूप में साकार हुई। श्री गुरुदेव भगवान को नमन इष्ट आराध्य को नमन है। श्री सद्गुरु भगवान को समर्पण सर्वव्यापी परमेश्वर को समर्पण है। गुरु ही गोविन्द है और गोविन्द ही गुरु है।

"श्री गुरुगीता" के माध्यम से सभी शिष्य–साधक गण को यह सत्य भलीभांति जान लेना चाहिए कि श्री गुरुदेव से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्व नहीं है। ऐसे परम श्रेष्ठ और शिष्य वत्सल श्री गुरुदेव की सेवा करना ही शिष्य का पुनीत कर्तव्य है। उनके द्वारा लोक कल्याणकारी कार्यों में शिष्य को उत्साहित होकर भागीदार होना चाहिए, अन्ततः जीवनदान करने में किसी भी शिष्य को संकोच नहीं होना चाहिए। यदि कहीं संकोच है तो शिष्यत्व अंकुरित ही नहीं हुआ है। बाबा कबीर दास जी की उक्ति 'सीस उतारे मुई धरें' वाली उक्ति को साकार करता है जब शिष्य बन गए तो, अहं के विसर्जन में संकोच क्यों?

जब हम अपने को शिष्य कहाते हैं तो फिर नमन में संकोच क्यों? गुरु नमन की महिमा को भगवान सदाशिव आगे माँ जगदम्बा पार्वती से कहते हैं –

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीऽयं भवरोगवैद्यं,
श्री मद्गुरुंनित्यमहम् नमाम।।

अर्थात् श्री गुरुदेव आनन्दमय रूप है। वे शिष्यों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। वे प्रभु प्रसन्न मुख एवं ज्ञानमय हैं। वे सदा आत्मबोध में निमग्न रहते हैं। योगीजन सदा उनकी स्तुति करते हैं। संसार रूपी रोग के वही एक मात्र वैद्य हैं मैं उन श्री गुरुदेव जी को नित्य नमन करता हूँ–

यस्मिन सृष्टिस्थिति ध्वंसनिग्रहानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नमाम्यहम्।।

अर्थात् जिनकी चेतना में उत्पत्ति, स्थिति, ध्वंस, निग्रह एवं अनुग्रह ये पांच कार्य सदा होते रहते हैं, उन श्री गुरुदेव को मेरा नमन है।

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।

वराभययुतं शान्तं स्मरेत्तं नामपूर्वकम्।।

अर्थात् इस भाव से श्री गुरुदेव को नमन करते हुए प्रातःकाल सहस्रारदल कमल में शान्त, वराभय मुद्रा वाले, कृपा करूणा रूपी दोनों नेत्रों वाले, रक्षण पोषण रूपी दो भुजाओं वाले श्री सद्गुरुदेव का नाम सहित स्मरण करना चाहिए। श्री भगवान सदाशिव आगे कहते हैं –

संसारवृक्षमाल्दा पतन्तो नरकार्णिवे।

येन चैवोद्धृताः सर्वे तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् उन श्री सद्गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में बार–बार नमन, जो संसार वृक्ष पर आरूढ़ जीव का नरक सागर में गिरने से उद्धार करते हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् नमन करता हूँ उन श्री गुरुदेव के श्री चरणों में जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर होने के साथ परब्रह्म परमेश्वर हैं।

त्वं पिता त्वं च मे माता त्वं बंधुस्त्वं च देवता।

संसार प्रति बोधार्थं तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् नमन उन श्री गुरुदेव के चरणों में जो हमारे पिता हैं, माता हैं, बन्धु हैं, इष्ट देवता हैं और संसार के सत्य का बोध कराने वाले हैं।

गुरुरादिनादिश्च गुरुः परम दैवतम्।

गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

भगवान सदाशिव कहते हैं कि हे पार्वती श्री गुरुदेव ही आदि और अनादि हैं। वही परम देव हैं। उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं। उन श्री गुरुदेव को नमन है।

भगवान साम्ब सदाशिव द्वारा स्फुरित श्री गुरुगीता के महामंत्रों में श्री गुरुदेव के नमन का विज्ञान विशेषतः है। गुरुतत्व को जान लेने पर, उनकी महिमा का आत्म साक्षात्कार कर लेने पर सद्शिष्य को कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। जब शिष्य के हृदय में अपने श्री गुरुदेव के प्रति नमन का भाव उपजता है तब उसका सर्वत्र मंगल ही होता है। श्री सद्गुरु को नमन शिष्य के लिए महाअभेद्य कवच है। इस सम्बन्ध में हमारे आश्रम की एक उदाहरण ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज जिसका दीक्षा के पूर्व का नाम रामगोपाल था। जो कि हमारे श्री गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त विभूषित श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी के गुरुभाई थे। वे अपनी जन्मभूमि हल्द्वानी (नैनीताल) में एक नामी वैधक का कार्य करते थे। उन्होंने नैनीताल में अनेक

महात्माओं के दर्शन किये, जिनमें एक हठयोगी महात्मा भी थे। वे एक शक्ति सम्पन्न योगी थे राम गोपाल जी उनसे दीक्षा चाहते थे उन्होंने अपनी योग दृष्टि से देखकर मना कर दिया कि हम तुम्हारे गुरु नहीं है। तुम्हारा संस्कार हमारे साथ नहीं है। तुम्हारे गुरु पंजाब प्रान्त के रहने वाले एक लम्बे कद के और गौरवर्ण के ब्राह्मण हैं तथा उनका नाम पं. रामलाल है। तुम प्रतीक्षा करो, समय आने पर उन्हीं के द्वारा तुम्हारा दीक्षा–संस्कार हो जायेगा।

श्री रामगोपाल जी ने उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया और किसी अन्य महात्मा से दीक्षा ले ली। वे महात्मा अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे किन्तु बड़े ही तपस्वी थे। इन्हीं श्री रामगोपाल जी का एक मित्र जो कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर पं. श्री रामलाल जी महाराज का शिष्य था। वह प्रायः श्री राम गोपाल जी से श्री प्रभुजी की योग–ऐश्वर्य की चर्चा किया करता था। इन्हीं मित्र की सहायता से श्री रामगोपाल जी सहारनपुर में श्री प्रभु जी का श्री गुरु–पूर्णिमा के अवसर पर कार्यक्रम चल रहा था, वहाँ पहुँच गये। वहां आनन्दकन्द योग योगेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री प्रभु जी का षोडशोपचार पूजन चल रहा था, वहाँ श्री रामगोपाल जी ने जो दृश्य देखा वे मन ही मन सोचने लगे कि यह सब ढोंग हैं। यह कोई योगीराज नहीं हैं। वे निराश होकर लौट गए, उनके मित्र ने रोकने की चेष्ठा की, किन्तु रुके नहीं। वही मित्र दूसरे दिन श्री प्रभु जी की सर्वशक्तिमत्ता एवं अपार महिमा को दृष्टान्तों द्वारा समझाकर दोबारा श्री कृपा निकेतन के पास लाया। परम करूर्णार्णव श्री प्रभुजी धोती कुर्ता पहने सिर पर पगड़ी बांधे अपने आसन पर विराजमान थे। श्री रामगोपाल के मन में यद्यपि सन्देह बना ही था, किन्तु अपने मित्र की देखा देखी इन्होंने भी श्री प्रभुजी के चरण कमलों में दण्डवत किया, मित्र ने श्री प्रभुजी को श्री रामगोपाल जी का परिचय दिया एवं आने का कारण बताया। परम करूणार्णिव अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने स्नेह पूर्वक आशीर्वाद दिया एवं उनके मनोभावों को जानकर मधुरवाणी में बोले बेटा! तुम यहाँ व्यर्थ ही आए हो तुम्हें तो ऐसे महात्मा के पास जाना चाहिए जिसकी लम्बी दाढ़ी हो, जटाएं हों, लाल पीले वस्त्र पहने हो, शरीर पर भस्म लगाए व, धूनी जमायें हों। हम तो साधारण धोती कुर्ता में एक पंडित है हमसे तुम्हें क्या मिलेगा। श्री कृपानिकेतन अन्तर्यामी श्री प्रभुजी के श्री मुख से अपने मन की बात सुनकर श्री रामगोपाल जी आश्चर्य में चकित हो गये। उनका सारा सन्देह दूर हो गया और दृढ़ विश्वास हो गया कि ये पंडित वेश में अपने को छिपाए कोई सिद्ध योगीराज हैं। वे मन ही मन लज्जित होकर अत्यन्त विनीत भाव से बोले प्रभो! मैं अब आपके चरणारविन्दों को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना चाहता हूँ। श्री रामगोपाल के इस भाव को देखकर श्री प्रभुजी ने चुटकी भर मिट्टी खाने को दी और ध्यान में बैठने को कहा। ज्यों ही ध्यान में बैठे तो श्री प्रभुजी की कृपा के फलस्वरूप श्री रामगोपाल जी का मन एकाग्र हो गया और लोक लोकान्तरों के दर्शन के साथ ही श्री प्रभुजी के अखण्ड मण्डलाकार व्यापक तेज का साक्षात्कार हुआ। इसके पूर्व श्री रामगोपाल जी भगवान श्री कृष्ण में प्रेम रखते थे अतः श्री प्रभुजी ने उन्हें पूर्व का मन्त्र जप करने हेतु कहा एवं उनके मंत्र

को चैतन्य कर दिया तथा उनका नाम उस दिन से 'गोपालानन्द' रख दिया। श्री गोपालानन्द जी महाराज वहाँ से लौटकर अपने घर चले आए और वहाँ से अपने पूर्व के गुरु के पास चले गये। यद्यपि पूर्व में बताया गया है कि उनके पूर्व के गुरु अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे, वहाँ पहुँचने पर जब यह पता चला कि रामगोपाल ने किसी अन्य गुरु से मन्त्र ले लिया है तो उन्होंने श्री गोपालानन्द जी महाराज को तत्काल क्रोधावेश में पाँच शाप दे दिये –

1. तू जीवन भर रोगी रहेगा।

2. तेरी औषधियों में विष हो जायेगा।

3. तेरे सारे रोगी बिगड़ जायेंगे।

4. तू जीवन भर दरिद्र रहेगा।

5. अन्त में तुझे सद्गति प्राप्त नहीं होगी।

यह पाँचों शाप प्राप्त कर ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई और भय से थर–थर काँपने लगे। परन्तु आर्तभाव से परम प्रभुजी का स्मरण करते हुए अपने घर लौट आये। घर पहुँच कर ब्र. गोपालानन्द जी महाराज ने आनन्दकन्द अन्तर्यामी जगतनियन्ता श्री प्रभु रामलाल जी महाराज को पत्र लिखकर पूर्व गुरु द्वारा दिये गए शापों का उल्लेख किया तथा शापों से रक्षा हेतु विनम्र निवेदन किया। परम करूणा निकेतन जन–जन के पालक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पास उक्त पत्र पहुँचने में लगभग दो–तीन दिन लग गये, इस बीच उस महात्मा के शाप के फलस्वरूप ब्र. गोपालानन्द जी महाराज जी की सब औषधियाँ जहरीली हो गई तथा उनके रोगियों के हालत खराब होती गई। जिससे ब्र. गोपालानन्द जी महाराज अत्यन्त भयभीत हो गए एवं असहाय होकर अन्तर्भाव से उन करूणासागर श्री प्रभुजी को सहायता हेतु मन ही मन पुकारने लगे। चौथे दिन उन जगतनियन्ता प्रभुजी के पास पत्र पहुँचा। परम करूणासागर श्री प्रभुजी ने पत्र का जवाब तुरन्त दिया – चि0 तुम्हारे पूर्व गुरु द्वारा दिये गये शापों का अब आगे से तुम पर कोई प्रभाव नहीं होगा, इस पत्र के मिलने के बाद से वे पाँचों दिए शाप वरदान में बदल जायेंगे –

1. तुम्हारे सभी रोगी स्वस्थ हो जायेंगे।

2. तुम्हारी औषधियों में अमृत का वास हो जायेगा।

3. तू आजीवन निरोगी रहेगा।

4. तू शीघ्र ही धनवान बन जायेगा।

5. देह त्याग के पश्चात् तुम्हें उत्तम लोक की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार परम योगेश्वर श्री प्रभुजी ने योगी की ''कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम'' की सामर्थ्य का परिचय देते हुए ब्र. गोपालानन्द जी के सभी शापों को अपने संकल्प मात्र से वरदान में परिवर्तित कर दिया और कृपा पात्र होते ही ब्र. गोपालानन्द जी का सारा संकट दूर हो गया।

इस प्रकार ब्र. गोपालानन्द जी महाराज की अटल गुरु भक्ति के सामने उस क्रोधी योगी की एक नहीं चली।

इस प्रकार गुरु भक्ति हेतु गुरु गीता के गुरु नमन मंत्र साधारण नहीं है। जिसकी वाणी में ये मंत्र है और हृदय में गुरुभक्ति है, वह गुरुकृपा के कवच से सदा सुरक्षित है। किसी भी प्रकार की शाप या अन्य संकट से उसकी कोई हानि नहीं होती अथवा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

इसीलिए भगवान सदाशिव कहते हैं –

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।

तत्वम् ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। श्री गुरुदेव की सेवा से बढ़कर कोई दूसरा तत्व नहीं है, उनसे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, ऐसे अनन्त विभूषित कृपालु गुरुदेव को नमन है।

मन को कैसे वश में करें

मन जब वश में हो जाता है। तभी उससे महान बनने योग्य कार्य कराये जा सकते हैं। क्षुद्र और नीच कार्यों में लगने से मन कभी वश में नहीं आ सकता। तेजस्वी और यशस्वी कार्यों में लगने से वह वश में आ जाता है। क्योंकि मन तेज का बना हुआ है।

रहिमन मनहि लगाय कें, देखि लेहतु किन कोय।

नर को वश करिवो कहा, नारायण बस होय।।

योग की महिमा

— प्रो. ऋषिराम शर्मा

योग की महिमा का यथार्थ ज्ञान तो सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ भूमिका अस्मितानुगत समाधि में स्वतः प्राप्त केवल यथार्थ ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही करा सकती है। तथापि मैं रूतम्भराप्रज्ञागर्भित आप्त वाक्यों का अवलम्ब लेकर जिज्ञासुओं के समक्ष परम श्रेयात्मक योग की महिमा का गुणगान करना चाहता हूँ इस लेख से मेरा एक उद्देश्य है कि जैसे किसी अत्यन्त कष्टदायी पीड़ा से पीड़ित रोगी को उसके कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली औषधि को पा जाने की बैचेनी रहती है और वह तब तक निरन्तर डाक्टरों के पास दौड़ता रहता है जब तक कि उसे किसी औषधि पर विश्वास नहीं जम जाता है। ठीक वैसे ही मैं भी अत्यन्त कष्टदायी भवताप से पीड़ित अपने लिए और अपने भाई और बहनों के लिए किसी विश्वसनीय औषधि की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूँ जिसके पान से भवताप से मुक्ति मिल जाये। गरूण पुराण में तदर्थ औषधि का उल्लेख किया है कि–

''भवतापेन हि तप्तानां योगो हि परमौषधम्''

अर्थात् भवताप से तप्त जीवों के लिए योग ही परम औषधि है। बस मैं इस औषधि पर अपना और आप सब का विश्वास जमाने के उद्देश्य से कुछ लिखना चाहता हूँ।

संसार का प्रत्येक प्राणी जन्ममरणजराव्याधिजनित यातनाओं तथा अनेकानेक मानसिक यातानाओं से असह्य दुःख भोग रहा है। वह दिनरात इन यातनाओं से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता रहता है किन्तु उलझता ही जाता है। महर्षि वशिष्ठ जी ने सांसारिक जीवों के कल्याण हेतु भगवान राम को निमित्त बनाकर उपदेश किया कि–

दुःसहा राम संसार विषवेगविषूचिका
योगगारूढमन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति।।

अर्थात् हे राम! भवताप रूपी विषपिषूचिका का वेग दुःसह है। यह केवल पवित्र योग रूपी गरुणमन्त्र के उपचार से शान्त होती है।

सांसारिक दुःख तीन प्रकार का होता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। योगहीन अशक्त जीव अपने विशुद्ध आनन्दमय स्वरूप को न पहचान कर ''मैं देह हूँ इस भाव में बँधकर दुःखी होता है। कफ, पित्त और वात आदि के विकार से उत्पन्न शारीरिक पीड़ा से होने वाले दुःख और काम क्रोधादि से जनित मानसिक यातनाओं को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। अति शीत, अति उष्ण, अति वात, अति वृष्टि और विद्युत्पात आदि दैवी शक्तियों से जन्य दुःख को आधिदैविक कहते हैं। सिंह वृश्चिक तथा सर्पादि प्राणियों से जन्य दुःख आधिभौतिक कहलाते हैं। वस्तुतः यह संसार एक भयंकर कंटकाकीर्ण अरण्य के समान है जिसमें भटकता

हुआ जिज्ञासु जीव मुक्ति पथ की खोज में चिन्तातुर है। उस पुण्यवान जिज्ञासु के लिए पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया है कि–

जननानाशजरोग्रवनेचरम् त्रिविधतापकुकंटकसंकुलम्
उपरमेत तृषोग्रदवानलम् जगदरण्यमवेक्ष्य सुधीरधी:।

अर्थात् जैसे भयंकर जंगल में शक्तिहीन जन्तुओं को शक्तिशाली सिंहादि हिंसक पशु खा जाते हैं वैसे ही शक्तिहीन जीवों को इस जगदरण्य में जन्म, मृत्यु और जरा ही भक्षण कर जाती हैं क्योंकि **''नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:''** जैसे ऋतु मार्ग से हटकर भटकते हुए पुरुष को शरीर के अवयवों में चुभने वाले तीक्ष्ण काँटे विदीर्ण कर देते हैं वैसे ही इस संसार रूपी जंगल के योगाभ्यास रूपी ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए जीव को आध्यात्मिक,आदिभौतिक ताप रूपी कंटक विदीर्ण कर देते हैं। जैसे जंगल में बाँसों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न दावानल जंगल के वृक्षों और जंगली जन्तुओं को जला डालती है वैसे ही इस संसार रूपी जंगल में विषय–वासनाओं और इन्द्रियों के संघर्षण से उत्पन्न तृष्णा रूपी दावानल सांसारिक प्राणियों को जला डालती है। अतएव इस प्रकार के दु:खदायी संसार रूपी जंगल को विवेक दृष्टि से देखकर मुमुक्षु पुरूष को योग–साधन रूपी ऋजुमार्ग प्राप्त करने के लिए वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए क्योंकि –

इहामुत्र विरक्तस्य संसारस्य प्रजिहासत:।
जिज्ञासौरेव कस्यापि योगेस्मिनधिकारिता।।

अर्थात् इस लोक और परलोक के विषय भोगों से विरक्त और इस दुखदायी संसार से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु पुरूष का ही परमश्रेयात्मक योग में अधिकार है।

अब शंका होती है कि योग से हमारे दु:खों का अन्त कैसे होगा तथा योगाभ्यास से हमें क्या प्राप्ति होगी? इस शंका का निवारण जगदात्मा भगवान कृष्ण अपने मुखारविन्द से करते हैं कि–

सुखमात्यन्तिकं यत्तत्द् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत:।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:
यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते।।
तं विद्यात् दुखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्
स: निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा ।।

अर्थात् उसको तुम योग के नाम से जानो जिसमें सर्व दु:खों का अभाव हो जाता है, जिसमें स्थित हुआ पुरुष अवर्णनीय अपार सुख को पाकर फिर कभी अपनी आनन्दमय स्वरूपस्थिति से विचलित नहीं होता, जिसमें स्थित हुआ पुरूष महान् साँसारिक दु:खों से भी

विचलित नहीं होता है, इससे उसे वह अद्भुत लाभ मिल जाता है जिससे अधिक फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। ऐसे आध्यात्मक योग का निश्चयात्मक एवं निर्द्वन्द्व चित्त से अभ्यास करना चाहिए।

अब शंका होती है कि योग की शरण में आने से ही भव–बन्धन से मुक्ति मिल जाती है तो वृत्तियों से विरोध हो जायेगा, क्योंकि श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्रतिपादित है कि

''तमेव विदित्वातिमृत्युमति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय।''

अर्थात् ब्रह्मज्ञान से ही जन्ममरण रूप भवबन्धन से मुक्ति मिलती है। मोक्ष–प्राप्ति का इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।

स्मृतियों में भी लेख मिलता है कि –

''ज्ञानादेव तु कैवल्य प्राप्यते येन मुच्यते''

अर्थात् ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे जीव भवन बन्धन से छूट जाता है।

भगवान शंकराचार्य जी ने भी इसी की पुष्टि की है कि –

नान्योस्ति पंथा भगवन्धमुक्तेर्बिना स्वतत्वावगमं मुमुक्षोः।।

अर्थात् मुमुक्षु के लिए तत्वज्ञान के अतिरिक्त मोह बन्धन से मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

भगवान कृष्ण ने भी अपने मुखारविन्द से इसे स्वीकार किया है कि –

''सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।''

अर्थात् ज्ञान को पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है। किन्तु इसमें एक विशेष रहस्य और भी है कि –

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति।।

अर्थात् निःसन्देह ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है किन्तु इस ज्ञान का योग–सिद्धि होने पर ही आत्मा में स्वयं प्रादुर्भाव होता है।

वस्तुतः माया के आवरण का क्षय हो जाना ही ज्ञान है, किन्तु बिना योग–सिद्धि के माया का अविद्याजनित आवरण क्षय होता नहीं है। एक बार लोक–कल्याणार्थ भगवती पार्वती जी ने भगवान सदाशिव से भी यही शंका की थी कि –

ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्धयोगेन योगो किं मोक्षदो भवेत्।।

अर्थात् जब ज्ञानियों का कथन है कि केवल ज्ञान से मोक्ष मिलती है, अन्य साधन से नहीं तो फिर सिद्धयोग से क्या प्रयोजन है और योग मोक्षदाता कैसे माना जाय।

इस शंका का समाधान स्वयं भगवान सदाशिव जी करते हैं कि –

ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा

सर्वे वदन्ति खगेन जयो भवति तर्हि किम्
विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमाप्नुयात्
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय न भवेत्
ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

अर्थात् यह तो सत्य है कि ज्ञान से ही मोक्ष मिलती है। सभी मुख से कहते हैं कि खड्ग से युद्ध में विजयी मिलती है किन्तु क्या कभी युद्ध और वीर पुरुष के बिना विजयश्री मिल सकती है अर्थात् नहीं। इसी प्रकार योग से रहित ज्ञान मोक्ष का दाता नहीं हो सकता। कोई चाहे कितना भी श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञानी हो, धर्म का ज्ञाता हो, विरक्त हो, विजितेन्द्रिय हो अथवा चाहे देवता हो, वह भी योग के बिना मोक्ष नहीं पा सकता।

जब तक योग साधनों द्वारा चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध नहीं हो जाता तब तक परास्वरूपस्थिति नहीं प्राप्त होती। जैसे औषधि का बिना पान किये केवल नामोच्चारण से व्याधि दूर नहीं होती इसी प्रकार योग द्वारा अपरोक्ष अनुभूतियाँ किए बिना केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से मोक्ष नहीं मिलती। यदि ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष मिल जाती होती तो दैत्यों के पति विरोचन को तो स्वयं ब्रह्मा जी ने ब्रह्मज्ञान दिया था अतः उसकी मोक्ष हो जानी चाहिए थी किन्तु नहीं हुई। अतः यही निश्चय होता है कि –

''नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्षाहते विरोचनवत्''

अर्थात् विरोचन की तरह केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवण मात्र से कृतकृत्यता नहीं मिलती।

श्रुतियों ने भी यही निष्कर्ष निकाला कि

अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः। अध्यात्मयोगाधि–
गमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।

अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार का उपाय योग है। अध्यात्मयोग की सिद्धि से ही धीर पुरुष अपने स्वरूप को जानकर हर्षशोक से मुक्त हो जाता है। स्कन्द पुराण में योग की श्रेष्ठता का निरूण इस प्रकार किया है कि –

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिद्ध्यति।।

अर्थात् आत्मज्ञान से मोक्ष मिलती है किन्तु वह भी योग के बिना नहीं। वह मोक्ष का हेतु योग चिर काल के अभ्यास के अनन्तर ही सिद्ध होता है।

मोक्ष में योग की अपेक्षा का कारण यह है कि जीव जन्मजन्मान्तरों से अविद्या के आवरण में देह बुद्धि से ही व्यवहार करता आया है। योगाभ्यास के बिना वह देह से अलग होकर अपनी चिद्रूपता का अनुभव कर नहीं सकता। वेदान्त के महावाक्यों आदि से जो ज्ञान की

प्राप्ति होती है वह भी वृति जन्य ज्ञान रहता है क्योंकि जब तक योगाभ्यास द्वारा निरोध समाधि की प्राप्ति नहीं होती तब तक जीव को वृतिसारूप्यता से ही अनुभव होते हैं। योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ जी ने भगवान राम को इसका रहस्य समझाया है कि –

जन्मान्तरचिराभ्यस्ता राम संसारसंस्थिति।

सा च चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्।।

अर्थात् हे राम । जीव में संसार–भावना जन्म जन्मान्तरों से चली आ रही है अतएव दृढ़ हो गई है। वह चिरकाल तक योगाभ्यास किए बिना कभी क्षीण नहीं होती है।

यहाँ एक शंका होती है कि यदि योगाभ्यास के बिना अपरोक्ष ज्ञान की अनुभूति तथा कैवल्यमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो पुराणों में राजा जनक, एवं ब्राह्मणों और तुलाधार वैश्य आदि को मोक्ष कैसे मिल गयी। भगवान ने अपने योग दर्शन में योग–सिद्धि के दो सूत्र बताये हैं। एक तो 'भगवत्प्रत्ययः विदेहप्रकृति– अर्थात् जिनकी पूर्वजन्मों में किए गये कार्यो से तत्वलीनता हो चुकी है उनको जन्म के उपरान्त स्वतः योगसिद्धि हो जाती है। दूसरों को स्मृतिप्रज्ञ पूर्वकमितरेषाम् अर्थात् ब्रह्मचर्य, ध्यान और समाधि के अभ्यास से योगसिद्धि होती है। सो राजा जनक आदि को अनुष्ठानों और योगाभ्यास फलस्वरूप उपरोक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह बात प्रतिपादित है कि

जग जतो यथा विप्रो यथा चैवासितादयः।

जिज्ञाकाद्यास्तु तुलावारारयो विशः

इस जाये च वहवो नीचयोनिगमता अपि

परां प्राप्ताः पूर्वाभ्यस्तस्वयोगतः।।

अर्थात् जैगीसव्य तथा असित इत्यादिक ब्राह्मण, क्षत्रिय और तुलाधारादिक वैश्य तथा अनेक नीच योनि को प्राप्त हुए जीवों ने अपेक्षाकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप ही तत्वज्ञान की प्राप्ति की।

इसलिए मुमुक्षु को योग–साधना में लगना ही है क्योंकि –

ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं

सज्जायते नैव दिलोलचेतसि

चौहपं न योगेन विना प्रशाम्यति

एत्मादर्थं हि यतेत् साधकः।।

अर्थात् ज्ञान मोक्ष का हेतु तो है किन्तु मोक्ष दाता ज्ञान की चंचल चित्त में उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है क्योंकि चित्त की चंचलता योगाभ्यास के बिना नहीं शान्त होती। अतः मुमुक्षु को योग का ही साधक बनना चाहिए।

जगदाता भगवान कृष्ण ने भी गीता में योग सर्वश्रेष्ठता को अंगीकार किया है कि

''जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते,'' ''सन्यासस्तु महावहो दुःखमाप्तुमयोगतः,'' तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः'', ''योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्'', इत्यादि। योगाभ्यासी को जो गति प्राप्त होती है वह घोर तपस्या करने से, तीव्र स्वाध्याय करने से तथा बड़े–बड़े यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होती। अत्रिसंहिता में इसकी पुष्टि की है कि –

न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्जयया।

गतिं गन्तुं द्विजनः शक्ताः योगात्सम्प्राप्नुवान्ति याम्।।

योग क्या है और योगाभ्यास कैसे किया जाय यह तो सद्गुरुदेव भगवान की शरणागति में ही समझ में आता है। बिना गुरुकृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। इस लेख का विषय तो यही है कि कल्याण के मार्गों में योग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। अतएव सर्वभाव से मनोवांछित फल देने वाले योग रूपी कल्पवृक्ष की आराधना करनी चाहिए। अब हम योग रूपी कल्पवृक्ष का वर्णन करते हैं कि

हृद्भूवो निगमवोधसुमूलको द्विस्कन्धः शङुन्नतलतुश्च यमादिपर्णः

ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसंस्यः सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोऽयम्।।

अर्थात् योग मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष है क्योंकि अन्य सभी परमात्मा की ओर ले जाने वाले साधन रूपी वृक्षों की अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है। हृदय रूपी भूमि में इस की उत्पत्ति होती है भगवान पतंजलि ने कहा है कि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। जैसे वृक्ष के विस्तार की हेतु उसकी जड़ें होती हैं वैसे ही इस योगरूपी कल्पवृक्ष का विस्तार ब्रह्मा विन्दु उपनिषद्, अमृतविन्दु उपनिषद्, ध्यानविन्दु उपनिषद्, योगतत्व, योगशिखादि उपनिषदों से, गीतका, रामायण, योगदर्शन आदि शास्त्रों से तथा गुरु वाक्यों से होता है। जैसे वृक्ष के फल–फूल और पत्तियों को सम्हालने के स्कन्ध होते हैं वैसे ही योग रूपी कल्पवृक्ष के अभ्यास और वैराग्य रूपी दो स्कन्ध हैं। याज्ञवल्क्य संहिता में योग की प्रसिद्धि के लिए षड् साधन बताये हैं कि

उत्साहसात्धैर्यात् तत्वज्ञानाच्चनिश्चयात्।

जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्धगति।।

अर्थात् उत्साह, साहस, धैर्य, तत्वधान, निश्चय तथा जनसंसर्ग से योग की प्रसिद्धि होती है। यह ही योग रूपी कल्पवृक्ष की लतायें हैं। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारादि वहिरंग साधन इसके पत्ते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि रूप योग के ही रंग साधन योग रूपी कल्पवृक्ष के पुष्प हैं और असम्प्रज्ञात समाधि से उत्पन्न मोक्ष रूपी लगता है।

बस ऐसे योग रूपी कल्पवृक्ष को पाने के लिए जो श्रद्धालु जिज्ञासु प्रयत्न करेंगे उनकी योग योगेश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु जी सब प्रकार से सहायता करेंगे।

• योग–आसन

गोमुखासन

असव्ये पृष्ठपार्श्वे तु वाम गुल्फं नियोजयेत्।
सव्ये सव्यं तथा गुल्फं गोमुखं गोमुखाकृति।।
ऊर्ध्वतो दक्षिणं ह ा पृष्ठ देश नयेत्तथा।
अधस्तात्सव्य हस्तं तु तर्जन्या तर्जनीम्रियात्।।

विधि– दाहिने पृष्ठपार्श्व नितम्ब भाग (चूतड़) के नीचे बायें पैर की एड़ी को व बायें नितम्ब के नीचे दाहिने पैर की गाँठ अर्थात् टखने सहित एड़ी को जमा कर दाहिने हाथ के शिर की ओर से व बायें हाथ को नीचे की ओर पीठ पर से ऊपर की तरफ बढ़ाकर दाहिने तर्जनी अंगुली से बायें हाथ से तर्जनी को दृढ़ता से पकड़ लें व दृढ़ भाव से बैठे रहें। इसी का नाम गोमुखाकृति का रूपक होने से गोमुखासन है।

समय– शनैः शनैः अभ्यास बढ़ा लेना चाहिये।

लाभ– मेरुदण्ड सीधा रहने से मन की एकाग्रता को बढ़ाता है। स्नायु दौर्बल्य को दूर करता है।

योग-साधन में तप का महत्व

— श्री सुरेन्द्र बहादुर, एम.ए.

(गतांक से आगे)

यवक्रीत ने उत्तर दिया – 'गुरु के मुख से सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने में देर लगती है। अतः सम्पूर्ण शास्त्रों का शीघ्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैं तप कर रहा हूँ।' देवराज इन्द्र ने उन्हें समझाते हुए कहा – 'विद्या तो गुरु के द्वारा ही आती है। तुम गुरु के पास जाकर विद्याध्ययन करो। तुम मनमानी और अशास्त्रीय विधि से जो हठपूर्वक शरीर को कष्ट देकर तप कर रहे हो इससे तुम्हें विद्या की प्राप्ति नहीं होगी।' यवक्रीत ने इन्द्र की सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे अपने तप में पूर्ववत् संलग्न ही रहे। परन्तु परिणाम वही हुआ जो इस प्रकार के तपों का होता है। अन्त में यवक्रीत को निराशा ही हाथ लगी। इसीलिए भगवान कृष्ण ने इस प्रकार के तपों के परिणामों को 'चलमध्रुवम्' कहा है। अतः बुद्धिमान साधक को सर्वदा सात्विक तप को ही आचरण में लाना चाहिए।

तप की महिमा

केवल योगमार्ग ही नहीं प्रत्युत कल्याण के सभी मार्गों में तप अनिवार्य रूप से पालनीय है। तप के द्वारा पूर्वकृत पापों का क्षय होता है और इसके परिणामस्वरूप अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण में ही परमात्मा का प्रकाश होता है।

अतः जो मनुष्य अपना परम कल्याण चाहता है उसे श्रद्धापूर्वक सात्विक तप का आश्रय लेना ही पड़ेगा। भगवत्प्राप्ति अथवा आत्मज्ञान का मार्ग बड़ा ही दुरूह एवं कंटाकाकीर्ण है। इसे तप के घोड़ों से संयुक्त योग के रथ पर आरूढ़ होकर निर्विघ्न पार किया जा सकता है। आत्मज्ञान अथवा भगवत्प्राप्ति हँसी खेल नहीं है। आज तक किसी ने हँस खेलकर उसे प्राप्त नहीं किया है। कबीरदास जी ने ठीक ही कहा है :–

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलै, तो कौन दुहागिन होय॥

यदि कोई कहे – 'अरे भाई! तप करने कौन जाय? भगवत्प्राप्ति तो भक्ति अथवा प्रेम मार्ग से हँस–खेलकर हो सकती है, क्योंकि तुलसीदास जी ने कहा है :–

कहहु भगति पथ कवन पयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥

अर्थात् भक्ति मार्ग में कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें योग यज्ञ, जप, तप, उपवास आदि किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं है। परन्तु ऐसा कहने वाले तुलसीदास जी की निचली पंक्तियों पर ध्यान नहीं देते। भक्ति मार्ग की सरलता बतलाते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:–

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग नमख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ सन्तोष सदाई।।
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा विश्वासा।।
बहुत कहउं का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।
बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आशा।।
अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा।।

कहने को तो प्रथम पंक्ति में कह दिया गया कि 'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा', किन्तु पाठक जरा निचली पंक्तियों पर ध्यान दें तो उन्हें भक्ति–मार्ग की सरलता का पता स्वयं चल जायगा। भक्ति पथ की आवश्यकतायें गिनाते हुए भगवान श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि इस पथ के लिए इतनी योग्यतायें अनिवार्य हैं :– स्वभाव की सरलता, मन में कुटिलता का अभाव, सर्वदा सन्तोष, अचल निष्ठा (अर्थात्, मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरोस्त्रिजगद्गुरो की भावना), बैर–शून्यता, विग्रह–हीनता, अभय, निष्कामता, अकिंचनता अममत्व, अमानित्व, निष्पापता, अक्रोष, विज्ञानपटुता, सत्संग में सर्वदा प्रीति, विषयों में विस्तृणारूप अपर वैराग्य, स्वर्ग और अपवर्ग तक के भोगों में वैराग्य का होना, इत्यादि।

अब पाठकगण कृपया सोचें कि क्या भक्तिपथ के लिये गिनायी गयी उपरोक्त योग्यतायें सभी मनुष्यों में जन्मजातरूप से पायी जाती हैं? क्या इन सद्गुणों को प्राप्त करना सरल है? क्या इन योग्यताओं को प्राप्त करने के लिये तप अपेक्षित नहीं है? क्या बिना यम–नियम का कठोरता के साथ पालन किये और बिना दीर्घ काल तक निरन्तर श्रद्धापूर्वक अभ्यास किये ये योग्यतायें सुलभ हो सकती हैं? मैं समझता हूँ कोई भी विचारशील मनुष्य इन प्रश्नों का स्वीकारात्मक उत्तर नहीं देगा। कबीरदास जी ने तो इस मार्ग को अपना शिर अपने हाथ से काटकर और अपने ही पैरों से उसे कुचलने के बराबर कठिन बताया है। उनका कहना है:–

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
शीश उतारे भुइं धरे तब पैठे घर माहिं।।
सीस उतारे भुइं धरे ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहे कि ऐसा होय तो आव।।
प्रेम न बाड़ी ऊपजे प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय।।

अतः जिसे अपने परम श्रेय को प्राप्त करने की सच्ची अभिलाषा होती है, भवसागर को शीघ्रातिशीघ्र पार कर लेने की जिसे छटपटाहट होती है, वह सर्वदा इस प्रकार का विचार रखता

है :–

एहि तन का दियला करूँ, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव।।

तप की इतनी बड़ी महिमा है कि भगवान श्री कृष्ण को भी अपने समान पुत्र प्राप्त करने के लिए तप करना पड़ा था। जगदम्बा पार्वती को भी भगवान शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए कठोर तप करना पड़ा था। नारदजी ने पार्वती को तप की महिमा समझाते हुए कहा था :–

तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तप बल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तप बल संभु करहि संघारा।
तप बल सेषु धरइ महि भारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी।

– श्रीरामचरित मानस

अर्थात् – तप के ही बल से ब्रह्मा जगत की रचना करते हैं, तप के ही बल से विष्णु सारे संसार की रक्षा करते हैं, तप के ही बल से शंकर संहार करते हैं और तप के ही बल से शेषनाग पृथ्वी को धारण करते हैं। सारी सृष्टि तप के ही आधार पर टिकी हुई है। इसलिए हे देवी! तुम जाकर तप करो। महाभारत में लिखा है –

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
आयुः प्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो।।
ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं सम्पत् तथैव च।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ।।

महाभारत

अर्थात्– तपस्या से स्वर्ग मिलता है, तपस्या से यश मिलता है तथा तपस्या से आयु, उत्कर्ष और भाग प्राप्त होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति तथा सौभाग्य भी तपस्या से प्राप्त होते हैं।

तपसश्चानुपूर्व्येण फलमूलाशिनस्तथा।
त्रैलोक्यं तपसा सिद्धाः पश्यन्तीह समाहिताः।

अर्थात् – फल–मूल का आहार करने वाले सिद्धगण तपस्या के ही प्रभाव से चित्त को एकाग्र करके तीनों लोकों की घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

नाना प्रकार की विद्यायें तपस्या से ही प्राप्त होती हैं। 'तपोमूलं हि साधनम्'। अर्थात् –

सारे साधनों की जड़ तपस्या ही है। तपस्या के द्वारा अलभ्य वस्तु भी लभ्य हो जाती है, असाध्य भी साध्य हो जाता है, अप्राप्य भी प्राप्य हो जाता है, मर्त्य भी अमर्त्य हो जाता है।

'तपसो हि दुरतिक्रमम्।' अर्थात् – तप का प्रभाव दुर्लंघ्य है। हमारे शास्त्रों में तप की इतनी बड़ी महिमा कही गयी है कि उसे स्वयं ब्रह्म कह दिया गया और उस ब्रह्म को तप के द्वाराजानने की आज्ञा दी गई है। यथा :– **तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति। !** अर्थात् – ब्रह्म को तप के द्वारा जानने की इच्छा कर। तप ही ब्रह्म है।

जीवन की तमन्ना

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

गुरु देव मेरे जीवन की – बस एक तमन्ना है।
तेरे चरणों में जीना और चरणों में मरना है।।
कितने नाम गुरु जी तेरे – किस नाम को पुकारूँ मैं
रहें सारे नाम जबाँ पे – गुरु वर को रिझाऊँ मैं
एक नाम है अन्तर्यामी – कण कण में समाया है।
तेरे चरणों ....(1)

प्रभू रामलाल के प्यारे – सारी दुनियाँ के रखवारे
अशरण–शरण के संकट – अकारण ही टारे
तेरे नाम की माला गुरुवर – हर कोई जपता है।
तेरे चरणों ....(2)

तेरी लीला अजब निराली – हे गुरु चन्द्र मोहन मुरारी
कितने मुर्दों के प्राण सहाई – हे धोती कुर्ता धारी
कैसे अपना रूप छिपाए – ये दुनियाँ अनजानी है।
तेरे चरणों ....(3)

ऋषि मुनि और योगी सारे – तेरे ही गुण गाते
हे नाथ हे वर दाता – सब तुझ से ही वर पाते
अधम गुरु रंग, रंग ले – गुरु धाम को जाना है।
तेरे चरणों ....(4)

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है – सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है!

– महर्षि अरविन्द

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

मुण्डकोपनिषद् 2/2/8

कार्य और कारणस्वरूप उस परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तम को तत्व से जान लेने पर इस जीव के हृदय की अविद्यारूप वह गाँठ खुल जाती है, जिसके कारण इसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है, इतना ही नहीं, इसके समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं अर्थात् यह जीव सब बंधनों से सर्वथा मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14588. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा